अहिल्याबाई

अहिल्याबाई

हीरालाल शर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

1

मंदिर के आंगन में

मंदिर में आरती हो रही थी। गोधूलि की बेला थी। भगवान शंकर का वह मंदिर छोटा पर प्राचीन था। शंख घड़ियाल की ध्वनि बड़ी मधुर लग रही थी। पवित्रता व सरलता का वातावरण छाया हुआ था। मंदिर में गांव के कुछ निवासी एकत्रित थे। कुछ यात्री भी थे जो रात भर ठहरकर आगे बढ़ जाने वाले थे। सब भक्तिपूर्वक आरती कर रहे थे।

तभी एक छोटी-सी बालिका वहां आई। उसके हाथों में एक छोटी-सी आरती थी। आरती में दीपक जल रहा था। उसमें पूजन सामग्री भी थी। बालिका ने शिवजी पर पुष्प चढ़ाए, दीपक रखा व श्रद्धा भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वहां खड़ी हो गई। उसमें कुछ ऐसा सात्विक आकर्षण था कि सबकी आंखें उस पर ही स्थित हो गईं। वह ऐसी दिखाई दे रही थी मानो सरलता, भक्ति व पवित्रता की मूर्ति ही हो।

आरती समाप्त होते ही उस बालिका ने पुन: भगवान को प्रणाम किया, परिक्रमा की, वहां उपस्थित समस्त लोगों को आदरपूर्वक प्रणाम किया और अपने घर चली गई। एक शब्द भी किसी से नहीं बोली। वहां जो थे, वह सभी मंत्रमुग्ध हो अपलक उसे देखते ही रह गए।

पर कुछ क्षणों के उस मौन में बहुत-सी बातें हो गईं। एक अत्यंत गौरवपूर्ण इतिहास का सूत्रपात उन्हीं मौन क्षणों में हो गया। वे भारत के स्वर्णिम इतिहास के अत्यंत महत्वपूर्ण क्षण थे।

वह मंदिर जहां आरती हो रही थी, महाराष्ट्र के चौंडी नामक गांव में था। मंदिर में उपस्थित यात्रियों में पेशवा के प्रतापी सेनापति मल्हारराव होलकर व उनके कुछ सहायक थे। वह बालिका जो देव-दर्शन को आई थी, अहिल्याबाई थी। चौंडी गांव के पटेल माणकोजी शिंदे की वह पुत्री थी।

उत्तर भारत की यात्रा से मल्हारराव पूना लौट रहे थे। चौंडी गांव में सांझ हो गई थी अत: रात वहीं रुककर सवेरे आगे बढ़ने वाले थे, पर उस तेजस्वी बालिका को देखने के बाद मल्हारराव के मन में कुछ और ही योजनाएं बनने लगी थीं।

उस बालिका की धर्मपरायणता, शील व विनम्रता पर मल्हारराव मुग्ध हो गए थे। वह सुंदर या आकर्षक भी नहीं थी। रंग भी सांवला था। उसके मुख मंडल पर एक अपूर्व गंभीरता व तेज था। उसकी आंखों में बड़ी गहराई व शांति थी। केवल आठ वर्ष की आयु में ही उसमें कितनी प्रौढ़ता, शालीनता व मर्यादा थी। मल्हारराव देश में बहुत घूमे थे पर ऐसी सुशील बालिका उन्हें कहीं भी नहीं दिखी थी।

उन्होंने बालिका अहिल्या को देखा, कुछ विचार किया और एक महत्वपूर्ण निर्णय भी कर लिया। उनका इकलौता पुत्र था खण्डेराव। वही उनका सर्वस्व था। उस पर ही उनके पराक्रम से अर्जित राज्य व वैभव का भार पड़ने वाला था। पर वह अपने पिता के समान पराक्रमी व तेजस्वी नहीं था। राज-काज में उसे अधिक रुचि नहीं थी। मल्हारराव ऐसी सुयोग्य पुत्रवधू चाहते थे जो उनके बेटे को राज-काज संभालने की प्रेरणा दे और राज्य भी संभाले। ऐसी लड़की की खोज वे सतत कर रहे थे। उस दिन अहिल्याबाई उन्हें ऐसी जंची कि उसे अपनी पुत्रवधू बनाने का संकल्प मंदिर में उन्होंने कर ही लिया। बड़ी धूमधाम के साथ विवाह हुआ और अहिल्याबाई को अपनी पुत्रवधू बनाकर वे ले आए। पेशवा ने भी अहिल्याबाई को देखकर मल्हारराव के निर्णय की सराहना ही की।

इतिहास साक्षी है कि जिस दिन अहिल्याबाई ने होलकर वंश की देहरी में अपने चरण रखे, उसी दिन से होलकरों के वैभव में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रही। और अहिल्याबाई ने जब उस देहरी को सदा के लिए छोड़ा तो अक्षय कीर्ति की अमूल्य निधि उस वंश को प्रदान कर गई। इतना ही नहीं, अपने जीवन के द्वारा समूची मानवता को मंदिर-सी पवित्रता व शाश्वत सुख-शांति की अनुपम भेंट भी दे गई।

2

मल्हारराव होलकर

अत्यंत गरीब व साधारण परिवार में जन्म लेकर अपने पराक्रम व पुरुषार्थ से अपनी जन्मभूमि से बहुत दूर और विषम परिस्थितियों में एक विशाल राज्य की स्थापना कर इतिहास में अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाने वाले सूबेदार मल्हारराव होलकर का जीवन अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण, प्रेरक, रोचक व शिक्षा लेने योग्य है। बचपन में भेड़ चराने वाला बालक मल्हारराव आगे चलकर अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का प्रमुख सूत्रधार तथा मराठों की सत्ता मालवा में स्थापित करने वाला महापराक्रमी सेनानी बना। अपनी असाधारण योग्यता, वीरता व चरित्रबल के कारण वह अपने स्वामी पेशवाओं का परम विश्वासी सहायक था। अनेक विकट संग्रामों का विजेता शूर सेनापति मल्हारराव सन 1716 से 1766 तक के पचास वर्षों के मराठा इतिहास का सबसे प्रमुख व तेजस्वी पात्र रहा है।

होलकरों के पूर्वज महाराष्ट्र में वाफ गांव के मूल निवासी थे। कुछ समय बाद इनके वंशज पूना के पास स्थित होल नाम के गांव में बस गए। होल के निवासी होने के कारण इनका उपनाम होलकर पड़ा। वहां खण्डोजी होलकर गांव के पटेल के सहायक थे। उन्हीं खण्डोजी के यहां सन 1693 में मल्हारराव का जन्म हुआ। उस दिन रामनवमी थी। ऐसे शुभ दिन जन्म लेने वाला बालक मल्हार बड़ा भाग्यवान है, इस बात का विश्वास माता-पिता को प्रारंभ से ही था। ऐसे अच्छे बालक को पाकर वे बहुत सुख का अनुभव करते थे।

मल्हार अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र था। वह केवल तीन वर्ष का था, तब पिता का देहांत हो गया। मां का नाम जिवाई था। उस बेचारी पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। खण्डोजी के परिवार के अन्य लोग मल्हार व जिवाई को आश्रय देने के बदले उनकी जमीन-जायदाद हड़पने लगे। मां-बेटे को वहां किसी का आधार नहीं था। बालक मल्हार का जीवन भी संकट में था। वहां का जीवन संकटों से भरा देख विवश हो जिवाई बेटे को लेकर अपने भाई के पास तलौदे गांव में आ गई। तलौदे खानदेश में है। उसका भाई भोजराज बार्गल वहां पटेल का सहायक और पेशवा के कण्ठाजी कदमबाण्डे नाम

के एक अधिकारी के अधीन पच्चीस घुड़सवारों का नायक भी था। भाई ने अपनी बहन को आश्रय दिया। मल्हार जब थोड़ा बड़ा हुआ तब मामा ने भेड़ चराने का काम उसे सौंप दिया।

दिन बीत रहे थे। मल्हार अब आठ वर्ष का हो गया था। नित्य नियम के अनुसार सवेरे वह भेड़ चराने जंगल में जाता था। इन्हीं दिनों की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। सदा की तरह मल्हार जंगल में भेड़ चराने गया था। वहां दोपहर को तेज धूप के कारण एक झाड़ की छाया में लेट गया। थोड़ी देर में उसे झपकी लग गई। इतने में पास ही की बांबी में से एक काला नाग निकला और सोए हुए मल्हार के सिर पर फन फैलाकर पास ही बैठ गया। इतने में भोजन लेकर मां जिवाई आई। उसने वह दृश्य देखा तो कांप उठी। अपने बेटे के जीवन के लिए वह बहुत ही चिंतित हो गई। घबराकर भागी हुई घर गई और अपने भाई व कुछ लोगों को वहां ले गई। सबने वह अद्‌भुत दृश्य देखा। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। भीड़ देखकर नागराज वापिस बांबी में लौट गए।

दौड़कर मां ने मल्हार को जगाया। नाग ने उसे स्पर्श भी नहीं किया था। वह पहले जैसा एकदम स्वस्थ था। मां ने आनंद से पुलकित हो उसे हृदय से लगा लिया। उसकी आंखों से खुशी के आंसू बह निकले। फिर बेटे को भोजन करा कर वह उसे घर ले गई। पर इस अनहोनी घटना के कारण वह बहुत दुखी व चिंतित थी। उसने कई लोगों से इस घटना के बारे में पूछा। फिर वह गांव में एक ब्राह्मण के घर भागी हुई गई। उन्होंने कहा—'घबरा मत ! अरे बाई, तेरा यह बेटा राजा बनेगा। यह बड़ा भाग्यवान है। यह अपने पराक्रम से पृथ्वीपति बनेगा और तू राजा की मां कहलायेगी !'

यह सुनकर मां आनंद से गद्‌गद हो गई। उसने ब्राह्मण देवता को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया। मामा ने उसी दिन से भेड़ चराने का काम बंद कर अपने घोड़ों की देखरेख करने का काम मल्हार को सौंप दिया। थोड़े ही दिन बाद मां जिवाई का स्वर्गवास हो गया। वह अपने पुत्र के स्वर्णिम दिन देख नहीं सकी। ब्राह्मण की भविष्यवाणी का मामा के मन पर बहुत अधिक प्रभाव हुआ था। भानजे का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल समझकर उन्होंने अपनी बेटी गौतमाबाई का विवाह उसके साथ कर दिया। शीघ्र ही पच्चीस घुड़सवारों का नायक भी उन्होंने मल्हार को बना दिया।

जीवन के उस प्रभात में घोड़े की पीठ पर मल्हार बड़े ही शुभ मुहूर्त में बैठा। वहीं से उसके भाग्योदय का श्रीगणेश हो गया। जीवन के अंतिम क्षण तक घोड़े की पीठ उससे छूट नहीं सकी। मल्हारराव ने अपने पानीदार घोड़े पर बैठ हाथ में तलवार लेकर पूना से दिल्ली व अटक तक के पूरे उत्तर भारत में अपनी धाक बैठा दी और अपने पराक्रम से असंभव को संभव कर विशाल साम्राज्य की स्थापना कर अक्षय कीर्ति का वरण किया। उसने होलकर राज्य की स्थापना की। अजापाल से प्रजापाल बनने वाले वीरवर मल्हारराव होलकर जैसे चरित्र विश्व इतिहास में दुर्लभ ही हैं।

3

तत्कालीन भारत व होलकर राज्य की स्थापना

सत्रहवीं शताब्दी में भारत की राजनैतिक व सामाजिक स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। अशांति, असंतोष व अराजकता का सर्वत्र बोलबाला था। कई छोटे-बड़े राज्यों में देश विभक्त था। इन राज्यों में आपस में बड़ा मनमुटाव था व लड़ाइयां भी चलती ही रहती थीं। युद्धों के कारण खेती व शासन व्यवस्था दिन पर दिन बिगड़ती ही जा रही थी। प्रशासन व सुव्यवस्था की ओर राजाओं का कोई ध्यान नहीं था। शासन व्यवस्था नाम की कहीं कोई बात थी ही नहीं। सत्ता के लिए राज परिवारों में हीनतर षड्यंत्र व मारकाट चलती ही रहती थी। राजाओं की अनीति, अधिकारियों का भ्रष्टाचार और चोर, डाकुओं व पिंडारियों के आतंक के कारण बेचारी प्रजा बहुत दुखी थी। जनता का जीवन असुरक्षित व संकटों से भरा था। जनता के हितों के बारे में सोचने का समय किसी के पास नहीं था। सब अपने अपने स्वार्थों को पूरा करने में लगे थे।

दिल्ली में मुगल सम्राट मुहम्मद शाह नाममात्र का शासक था। उसमें न योग्यता थी और न शक्ति। कहीं प्रभाव भी नहीं था। रंगरेलियां मनाने में उसका सारा समय जाता था। मुगल साम्राज्य के सीधे आधीन दोआब, जमुना व सतलज के बीच का भाग और गुजरात ही रह गया था। अवध, बंगाल, बिहार, रोहिलखंड आदि स्थानों पर स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गए थे। राजस्थान के राजपूत राजा भी स्वतंत्र हो गए थे। मुगल साम्राज्य तेजी से विघटित होता जा रहा था। मुगलों की सेना भी शक्तिहीन थी।

उन दिनों पुर्तगाल, इंग्लैंड, फ्रांस, हालैंड आदि यूरोप के साम्राज्यवादी देशों ने भारत में कई किले व कोठियां बनाकर कुछ भूभागों पर अपना अधिकार भी कर लिया था। इन देशों की महत्वाकांक्षा सोने की चिड़िया भारत को जीत कर अपने देश को संपन्न व शक्तिशाली बनाना थी। फ्रांसीसियों का दक्षिण भारत में अधिक प्रभाव था। अंग्रेज भी अपने पांसे बड़ी चतुराई से फेंक कर अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे। इन विदेशियों के अड्डे भारत के पूर्वी व पश्चिमी समुद्र तटों पर अधिक थे। अहमद शाह अब्दाली भी सिंध, पंजाब व कश्मीर पर अधिकार कर तेजी से आगे बढ़ रहा था। लेकिन इन सारे विदेशी आक्रमणकारियों की चिंता देश में किसी को नहीं थी।

उत्तर भारत की, विशेषकर राजस्थान व मालवा की, हालत दिन पर दिन बिगड़ती

ही जा रही थी। राजस्थान में राजाओं से लेकर रंक तक भोग-विलास में डूबे हुए थे। नैतिकता व पवित्र आचरण सपने की बात बन गई थी। मदिरा की मस्ती में चूर, अफीम की पिनक में पड़े व राग-रंग में डूबे राजस्थान के राजा व रंक सब ही कूप मंडूक बने हुए थे। विदेश की बात तो दूर रही, अपने देश की तेजी से बदलती राजनीति का भी उन्हें कोई पता नहीं था। राज्य व सत्ता के लिए पतित से पतित कार्य करने में राजपूत थोड़ा भी संकोच नहीं करते थे। उत्तराधिकार के लिए राजस्थान के प्रत्येक राज्य में सच्चे व झूठे दावेदार उठ खड़े हुए थे और उन बातों को लेकर सारे राजस्थान के हर राज्य व छोटे छोटे परगनों तक में पारस्परिक विरोध व गृह-युद्ध चल रहे थे। इस भीषण अनैकता ने राजस्थान को पूरी तरह से विभक्त व शक्तिहीन कर दिया था। अपनी इतिहास प्रसिद्ध अदूरदर्शिता व मोहपूर्ण अपरिवर्तनवादिता के कारण ही राजस्थान की यह शोचनीय स्थिति बन गई थी।

शताब्दियों से मालवा प्रांत संस्कृति व सभ्यता का केंद्र रहा था। अनेक पुराण प्रसिद्ध विभूतियों, महान संतों और विक्रम व भोज जैसे महान नरेशों की यह कर्मभूमि था। अनेक धार्मिक व ऐतिहासिक स्थान मालवा में थे। यहां के निवासी सुसंस्कृत थे। मालवा की स्थिति भी बहुत महत्वपूर्ण थी। उत्तर भारत को दक्षिण से जोड़नेवाला तथा दोनों में संबंध स्थापित करने वाला यही एक प्रांत था। देश के महत्वपूर्ण सैनिक व अन्य मार्ग मालवा में ही थे। मालवा का सैनिक व राजनैतिक महत्व बहुत अधिक था।

मालवा बहुत संपन्न भी था। इस प्रांत में अनेक बड़े नगर थे। वे व्यापार के अच्छे केंद्र भी थे। प्रमुख नगर थे—उज्जैन, चंदेरी, धार, मांडू, सिरोंज, कोटा और मंदसौर। व्यापारिक राजमार्ग इन नगरों से देश के अन्य मार्गों में जुड़े हुए थे। मालवा में उद्योग-धंधे भी बहुत उन्नत थे। मालवा के रंगीन व छपे हुए कपड़े जो छींट कहलाते थे, देश में ही नहीं बल्कि सुदूर ईरान व टर्की में और यूरोप के कई देशों में बहुत लोकप्रिय थे।

मालवा बहुत उपजाऊ था। गेहूं, चावल, गन्ना व अन्य अनाजों के सिवाय अफीम, खरबूजा, अंगूर, खाने के पान, आम आदि यहां बहुतायत से होते थे। सुंदर घने जंगलों व अपूर्व प्राकृतिक दृश्यों की कमी नहीं थी। वनों में प्राकृतिक संपदा भरपूर थी। 'पग-पग रोटी, डग-डग नीर' की कहावत मालवा पर अक्षरश: लागू होती थी। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में मालवा की समृद्धि नजर लगने लायक हो गई थी।

मालवा में सन 1698 से एक नवीन युग का प्रारंभ हुआ। दीर्घकाल से मालवा में जो शांति व समृद्धि थी, उसका अंत सन 1698 में हो गया। सन 1690 में मरहठों ने धरमपुरी पर आक्रमण किया था व 1698 में मांडू का किला जीता था। 1699 में कृष्णाजी सावंत नाम के मरहठा सेनापति ने पंद्रह हजार मरहठे सवारों को लेकर नर्मदा पार की और घामुनी के आसपास के कुछ प्रदेशों में लूट-खसोट कर बिना किसी विरोध के महाराष्ट्र में लौट गया। श्री यदुनाथ सरकार के अनुसार—जो मार्ग इस प्रकार खुला, वह

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में, जब तक मालवा पूर्णतया मरहठों के आधिपत्य में न आ गया, किसी भी प्रकार बंद नहीं हुआ । इसके साथ ही मालवा प्रांत का राजनैतिक इतिहास पूर्णतया बदल गया ।

मालवा की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति के बारे में डा. रघुवीरसिंह का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—सन 1699 में 82 वर्ष के उस बूढ़े सम्राट औरंगजेब ने यह निश्चय किया कि युद्ध-क्षेत्र में वह स्वयं सेना का संचालन करे व मरहठों की शक्ति को पूर्णतया नष्ट कर दे । दूसरी ओर मरहठों ने जागीर प्रथा की शरण ली । प्रारंभ में अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए और बाद में अपने साम्राज्य को बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने इस प्रथा को पुनर्जीवित कर अपने शासन संगठन में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया । इस अराजकतापूर्ण शताब्दी के पूर्वकाल की प्रधान घटना मुगल मरहठों का द्वंद्व ही है । एक ओर निर्बल, पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य था और दूसरी ओर पुनर्जीवित, जागीर प्रथा से प्राप्त नवीन स्फूर्ति से पूर्ण मरहठों की शक्ति थी । इस द्वंद्व में मुगलों का पूर्ण पराभव हुआ । मालवा से उनकी सत्ता उठ गई और यहां मुगलों के स्थान पर मरहठों का आधिपत्य स्थापित हो गया । मरहटों की इस जागीर प्रथा ने मालवा में जड़ पकड़ ली और मरहठों के आधिपत्य ने ही इस प्रांत की मुगलकालीन रही सही जागीरों एवं राज्यों को स्थायित्व प्रदान किया । इस नवयुग के प्रारंभ से ही इस प्रांत में विभिन्न सत्ताओं, परस्पर विरोधी स्वार्थों एवं प्रतिकूल तत्वों की स्थापना होती है, वे स्थाई ही नहीं हो जाते हैं किंतु समय के साथ अधिकाधिक सुदृढ़ भी होते जाते हैं । और इन सबके वे कटुतम परिणाम—पारस्परिक युद्ध तथा प्रांत में अराजकता का एकछत्र शासन—इस शताब्दी के उत्तर काल में भी इस प्रांत का पीछा नहीं छोड़ते ।

सन 1664 में छत्रपति शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक कर हिंदू-पदपादशाही की स्थापना की थी । इस स्वराज्य के प्रति मरहठों के मन में बड़ा ममत्व व गौरव था । इस मराठा स्वराज्य की भावना का रूपांतर धीरे धीरे मराठा साम्राज्य में हो गया । उन दिनों मराठा नरेश सतारा में रहते थे । पर वे नाम मात्र के राजा थे । सारी शक्ति प्रधानमंत्री पेशवा के हाथों में थी । पेशवा का निवास पूना में था । पूना ही मराठा साम्राज्य की राजधानी व तत्कालीन राजनीति का केंद्र था । पेशवा की शक्ति कुछ प्रमुख मराठा सेनापतियों में केंद्रित थी । इनमें रघुजी भोंसले, आनंदराव पवार, दामाजी गायकवाड़, मल्हारराव होलकर व राणोजी सिंधिया प्रमुख थे ।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ की प्रतिभा, वीरता व संगठन कौशल के फलस्वरूप मरहठों में नवीन स्फूर्ति, शक्ति व आकांक्षाओं का उदय हुआ था । वे धन व सत्ता की प्राप्ति के लिए नवीन क्षेत्रों को ढूंढ़ ही रहे थे । राजस्थान, मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों की बिगड़ी हुई स्थिति, अव्यवस्था, शक्तिशाली शासकों के अभाव व वैभव ने महत्वाकांक्षी मरहठों के पुरुषार्थ को मानो निमंत्रण दिया । मरहठों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया ।

किंतु मालवा पर मरहठों के आक्रमण का प्रधान कारण पेशवा पर छाया भारी आर्थिक संकट था। पेशवा पर कर्ज बहुत हो गया था और उसे चुकाने के लिए उसे धन की बड़ी आवश्यकता थी। पेशवा को अपने राज्य में या दक्षिण भारत में इतना धन मिल ही नहीं सकता था। निजाम के राज्य में लूटमार करना संभव नहीं था। अतएव गुजरात, मालवा व राजस्थान के संपन्न प्रांत ही उसकी समस्याएं हल कर सकते थे। पर गुजरात प्रांत पर मरहठा सेनापति दामाड़े की नजर थी। अत: मालवा, राजस्थान व उत्तर भारत को पेशवा ने अपना कर्मक्षेत्र बनाया।

बाजीराव ने अपने सेनापतियों को सेना लेकर मालवा में भेजा। अपने प्रारंभिक आक्रमणों में मरहठों के दल मालवा में पहुंचे और लूटमार के द्वारा काफी धन लेकर पूना लौटे। यह क्रम चलता रहा। पेशवा ने अपने भाई चिमाजी को स्पष्ट आदेश दिए थे कि 'जो प्रदेश तुम्हें अच्छा लगे वहां जाओ और जिस किसी भी प्रकार से धन मिले व कर्जा पट जावे, वही काम करो, और शीघ्रातिशीघ्र धन भेजो।'

चिमाजी व अन्य सेनापतियों ने पेशवा के आदेश के अनुसार मालवा के जागीरदारों व निवासियों से बड़ी कड़ाई से धन वसूल किए। मरहठों ने मालवा व राजस्थान को कई बार खूब लूटा। राजाओं व जमींदारों से चौथ व अन्य कर बड़ी मात्रा में वसूल किए। शीघ्र ही मालवा, राजस्थान व समूचे उत्तर भारत में मरहठों का बड़ा आतंक छा गया। मरहठों ने पेशवा के नेतृत्व में दक्षिण में गोदावरी नदी तक व उत्तर में गंगा नदी तक अपने राज्य व प्रभाव की सीमाएं बढ़ा ली थीं। पूरे भारत पर उनका प्रभाव था। गुजरात, लखनऊ, पटना, बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, अजमेर आदि अनेक स्थानों से मरहठे चौथ वसूल करते थे। इस लूटमार में पिंडारी दल व मरहठे आपस में सहयोगी थे। महाराष्ट्र में तब दशहरे के पहले इस लूटमार व आक्रमण की जोरदार तैयारियां चलती थीं व दशहरे के शुभ मुहूर्त पर मरहठों के दल अपने भाग्य को चमकाने के लिए सीमोल्लंघन करते थे। मरहठों के इन दलों को देखते ही गांवों में आतंक छा जाता था व भगदड़ मच जाती थी। उत्तर भारत में इन मरहठा आक्रमकों को घोड़ेवाले कहते थे क्योंकि मरहठा सेना में घुड़सवारों की संख्या अधिक रहती थी।

मालवा व राजस्थान में लूट, चौथ आदि के रूप में मरहठों को अपार धन मिलता था। दिल्ली की निर्बलता व राज्यों की आपसी फूट के कारण मरहठों को अपने कार्यों में कोई असुविधा नहीं हुई। अराजकता ने उन्हें सहायता ही की। मुसलमान शासकों द्वारा हिंदुओं पर किए गए भीषण अत्याचारों के कारण हिंदू जनता बहुत दुखी थी। इस कारण भी मरहठों के पैर इस प्रदेश में सरलता से जम गए।

पेशवा की राजधानी पूना थी पर उसकी कर्मभूमि नर्मदा के पार का उत्तर भारत थी। पवार, सिंधिया, होलकर आदि प्रमुख सेनापतियों के सक्रिय सहयोग से पेशवा बाजीराव सारे सूत्रों का संचालन कर रहा था। इस कार्य में उसका भाई चिमाजी बल्लाल

भी पूर्ण रूप से सक्रिय था। 1730 के वर्षाकाल के बाद मालवा पर हुए मरहठों के आक्रमण का प्रधान सेनापति मल्हारराव होलकर ही था। तब मुगल सम्राट की ओर से मालवा में कोई सूबेदार नहीं था। उदाजी पवार से चिमाजी का मतभेद हो जाने के कारण मल्हारराव प्रधान सेनापति बनाए गए थे और 3 अक्तूबर 1730 को अन्य सब अधिकारों सहित मालवा के 74 परगनों का सरंजाम मल्हारराव को प्राप्त हुआ। इसके बाद मुगल सम्राट की ओर से नियुक्त सूबेदार मुहम्मद बंगश मरहठों को मालवा से खदेड़ने के लिए आगे बढ़ा पर उसे सफलता नहीं मिली।

सन 1732 में मुगल सम्राट ने सवाई जयसिंह को मालवा का सूबेदार बनाया और मरहठों को मालवा से मार भगाने का काम उसे सौंपा। पर जयसिंह इस कार्य में पूर्ण रूप से विफल होकर जयपुर लौट गया। इसी समय मरहठे फिर मालवे पर चढ़ आए। उनका कोई विरोध नहीं हुआ और मालवा मराठों के अधिकार में आ गया। इस राज्य को बढ़ाने व उसकी अच्छी तरह से व्यवस्था करने के लिए पेशवा ने जागीर प्रथा का उपयोग कर अपने प्रमुख सरदारों को जागीरें प्रदान कीं और इस प्रकार सन 1732 में मालवा में मराठा राज्यों की स्थापना हुई। मल्हारराव होलकर को मालवा, राणोजी सिंधिया को उज्जैन, आनन्दराव पवार को धार और तुकोजी व जीवाजी पवार को देवास की जागीरें मिलीं। इस प्रकार होलकर, सिंधिया व पवार वंशों के मराठा राज्य मालवा में स्थापित हुए। ये राज्य इस प्रांत की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण व नवयुग-प्रवर्तक सिद्ध हुए। मालवा में मराठों के आगमन व उनके शासन के कारण मालवा में कुछ सामाजिक परिवर्तन भी हुए। सन 1741 में मुगल साम्राज्य का संबंध मालवा से सदा के लिए टूट गया।

सन 1733 में मल्हारराव ने पेशवा बाजीराव प्रथम को एक प्रार्थना-पत्र दिया कि मेरी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए मेरी पत्नी गौतमाबाई को कुछ खासगी जागीर प्रदान की जाए। तदनुसार छत्रपति शाहू की आज्ञा से पेशवा ने मल्हारराव को एक पत्र लिखा कि अब आगे से खासगी और दौलत का विभाजन अलग अलग रहेगा।

इसके बाद 20 जनवरी 1734 को होलकर घराने को चिरकाल के लिए मालवा में वंश परंपरागत कुछ परगने देकर पेशवा ने मल्हारराव को विशेष सम्मानित किया। दक्षिण में कुछ जमीन देने के अतिरिक्त पेशवा ने मालवा में होलकर को महेश्वर का परगना व इंदौर परगने में से 9 गांव—हरसौला, सांवेर, बरलोई, देपालपुर, हातोद, महिदपुर, जगोठी, करज व माकड़ोन दिए। यह होलकर की खासगी की जागीर कहलाई। इसकी आमदनी तब 2 लाख 99 हजार रुपये वार्षिक थी। होलकर के सरंजाम में यह आमदनी जोड़ी नहीं जाती थी। इस खासगी जागीर के दिए जाने के दिन से ही मालवा में होलकर राज्य की विधिवत स्थापना हुई। इस होलकर वंश में सब मिलाकर 14 शासक हुए, 220 वर्षों तक होलकर राज्य रहा और 16 जून 1948 को इस होलकर राज्य का विलय भारतीय संघ में हो गया।

4

जन्म तथा बचपन

अहिल्याबाई का जन्म सन 1725 में चौंडी गांव के पटेल माणकोजी शिंदे के यहां हुआ था। चौंडी महाराष्ट्र में अहमदनगर के पास सीना नदी के किनारे पर बसा है। पिता माणकोजी एक साधारण गृहस्थ थे। वे बड़े सात्विक, सरल व धर्मपरायण व्यक्ति थे।

उस युग की अन्य लड़कियों के समान अहिल्याबाई को भी कोई विद्यालयी शिक्षा नहीं मिली थी। उन दिनों आज जैसा न तो शिक्षा का प्रचार था और न इतने विद्यालय थे। चौंडी में भी कोई स्कूल न था। फिर तब लड़कियों को पढ़ाने की प्रथा भी नहीं थी। घर पर ही उनकी दुनिया थी। पर माणकोजी ने घर पर से ही अहिल्याबाई को लिखना-पढ़ना सिखाया व कुछ धर्म-ग्रंथ भी पढ़ाए थे। धार्मिक ग्रंथों में व घर के कामकाज में बचपन से ही उन्हें बड़ी रुचि थी। घर पर ही उनकी पाठशाला व माता-पिता ही उनके शिक्षक थे। माता-पिता के परम धार्मिक, सरल-सात्विक व कर्तव्यपरायण जीवन का प्रभाव अहिल्याबाई के जीवन पर स्थाई रूप से पड़ा था। बचपन के श्रेष्ठ संस्कारों के कारण ही अहिल्याबाई इतनी महान बन कर स्मरणीय कार्य कर सकी थीं।

उनकी माता का नाम सुशीला था। वे बड़ी ही विदुषी, धर्मात्मा व कर्तव्यपरायण महिला थीं। पूजा-पाठ कर कथा-भागवत सुनना उनका नित्य का काम था। अहिल्याबाई अपनी मां के साथ छाया की तरह रहकर सारे धार्मिक कार्यों में भाग लेती थी। बचपन से ही व्रत व पूजा-पाठ करने और धर्म-ग्रंथों को सुनने में उनका मन रम गया था। उस अबोध आयु में ही वे पाप से डरकर अच्छे कार्यों को करने लगी थीं। मंदिर में वे नियमपूर्वक जाती थीं। ईश्वर में उनकी अविचल श्रद्धा थी जो जीवन भर बनी रही।

5

ससुराल में

विवाह के बाद अहिल्याबाई ससुराल आईं। अभी वे केवल नौ वर्ष की ही थीं पर बुद्धि व समझदारी की उनमें कमी नहीं थी। अपने सद्‌गुणों व मधुर व्यवहार के कारण ससुराल में वे सबकी प्रिय बन गईं। छोटे-बड़े सबसे वे अच्छा व्यवहार करती थीं। सास-ससुर को माता-पिता के समान मानकर उनकी सेवा व आदर करती थीं। सवेरे बहुत जल्दी उठकर, स्नान व पूजा-पाठ से निवृत्त हो गृह-कार्य व परिवार की सेवा में लगे रहना उनका प्रमुख कार्य था। आलस्य उनके स्वभाव में था ही नहीं।

मल्हारराव की तीन पत्नियां थीं—गौतमाबाई, बनाबाई व द्वारकाबाई। इन सबका अपनी गुणवान बहू अहिल्याबाई पर बड़ा स्नेह था। विशेषकर मल्हारराव व गौतमाबाई तो ऐसी अच्छी बहू को पाकर बहुत सुखी व संतुष्ट थे। गौतमाबाई बड़ी धर्मपरायण, तेजस्वी, निडर, साहसी व स्पष्टवादी महिला थीं। शासन प्रबंध व अन्य कार्य अच्छी तरह से करने की उसमें बड़ी क्षमता थी। गौतमाबाई का बहुत अधिक प्रभाव अहिल्याबाई पर पड़ा था।

मल्हारराव के सुखी होने के और भी कुछ कारण थे। अहिल्याबाई उनके घर पर आई थी, उसी दिन से उनका वैभव, प्रभाव व राज्य का विस्तार बढ़ता ही जा रहा था। अहिल्याबाई के कारण खण्डेराव के जीवन में भी सुखद परिवर्तन होने लगे थे। मल्हारराव अधिकतर घर से दूर रहते थे। विभिन्न राजनैतिक उलझनों व रणक्षेत्रों में वे सदा व्यस्त रहते थे। उनकी अनुपस्थिति में राज्य का सारा कार्य अहिल्याबाई ही बड़ी सफलता से संचालित करती थीं।

ससुराल में परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक थी। मल्हारराव व खण्डेराव की पत्नियों व उपपत्नियों के सिवा अन्य संबंधी भी थे। अहिल्याबाई से वे सब पूर्ण संतुष्ट थे। अहिल्याबाई रोज देर रात तक अपनी सासुओं की सेवा करती थीं।

अपने पति को पूज्य व आराध्य-देव मानकर पूर्ण निष्ठा से वे उनकी सेवा करती थीं। पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ उन्होंने पतिव्रत धर्म का पालन किया। पति का कभी निरादर नहीं किया और सेवा व मधुर व्यवहार से उन्हें सदा प्रसन्न रखा। सच्चे अर्थों

में वे एक आदर्श हिंदू नारी थीं। पति की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने कभी कोई कार्य नहीं किया। समयानुसार वे धर्मकथाएं पति को सुनातीं। फिर कभी वे भावी उत्तरदायित्वों के बारे में विचार करती थीं।

लाड़-प्यार में पला होने के कारण खण्डेराव अक्खड़ व क्रोधी था किंतु वह वीर, साहसी, स्वाभिमानी, महत्वाकांक्षी व चतुर था। अहिल्याबाई से उसने अच्छा व्यवहार किया। दोनों का जीवन सुख से बीत रहा था। सन 1745 में देपालपुर में अहिल्याबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। परिवार में व राज्य में आनंद की शहनाई गूंज उठी। तीन वर्ष बाद एक कन्या जन्मी। मालेराव व मुक्ताबाई ये दोनों ही अहिल्याबाई की संतान थीं। इन बच्चों के कारण अहिल्याबाई नित नए सुखों का आनंद ले रही थीं।

6

राज्य-कार्य की दीक्षा

मल्हारराव मनुष्यों का बड़ा पारखी था। अहिल्याबाई में असाधारण कर्तव्य, योग्यता व बुद्धि है, यह वह अच्छी तरह से जानता था। उसे मानो कोई अज्ञात प्रेरणा हो गई थी कि उसके द्वारा लगाए गए वैभव के पौधे की सुरक्षा व विकास अहिल्याबाई द्वारा ही होगा और उसके ही प्रयत्नों से वह पौधा एक ऐसे विशाल वटवृक्ष का रूप धारण कर लेगा जिसकी शीतल छाया में उसके वंशज ही नहीं, बल्कि अगणित लोग भी सुख-शांति का अनुभव करेंगे। अत: उसने अहिल्याबाई को राजकाज की दीक्षा देना और शासन का भार डालना भी शुरू कर दिया। देश की स्थिति, राजनीति के व्यावहारिक सूत्र व दांव-पेंच, युद्ध व युद्ध-क्षेत्र संबंधी जानकारी व समस्याएं और राज्य शासन संबंधी बातें वह अहिल्याबाई को समय समय पर बताता रहता था। एक आदर्श विद्यार्थी की तरह ये नए पाठ अच्छी तरह से आत्मसात कर शासन कार्यों में वे मल्हारराव को भरपूर सहयोग देने लगीं। कुछ ही वर्षों में यह स्थिति आ गई कि मल्हारराव की अनुपस्थिति में राज्य के सारे कार्यों का संचालन वे व्यवस्थित रीति से करने लगी थीं। मल्हारराव ही नहीं बल्कि राज्य के अधिकारी व प्रजा भी उनकी व्यवस्था से पूर्ण संतुष्ट व सुखी थे।

वे कई बार मल्हारराव के साथ युद्ध-क्षेत्रों में भी गई थीं। वहां उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी व अदम्य साहस के साथ समस्त कार्यों में सफलतापूर्वक भाग लिया था। युद्ध से संबंधित अनेक छोटी-मोटी बातों का उन्हें ज्ञान था। अपने राज्य में व देश में कई स्थानों पर शासकीय व युद्ध संबंधी कार्यों के लिए उन्हें यात्राएं करनी पड़ती थीं। मल्हारराव के आदेश से भी उन्होंने कई स्थानों पर जाकर विभिन्न कार्य किए थे। मल्हारराव उन्हें तीर्थयात्रा के लिए भी भेजता था। इन सारी यात्राओं से अहिल्याबाई को बड़ा लाभ हुआ था। देश का प्रत्यक्ष ज्ञान उन्हें हो गया था। एक अच्छे शासक के लिए देश की भौगोलिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थितियां जानने और व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के लिए देशाटन कितना आवश्यक है, यह मल्हारराव अच्छी तरह से जानता था। अहिल्याबाई ये सारी यात्राएं प्राय: घोड़े पर बैठकर ही करती थीं।

कई बार सुदूर स्थानों से मल्हारराव उन्हें पत्रों द्वारा जो आदेश भेजता था. उनका

पालन वे पूर्ण रूप से करती थीं। इन पत्रों से यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि अहिल्याबाई में कितनी योग्यता थी। उनके कारण मल्हारराव राज्य की ओर से कितना निश्चिंत था और अहिल्याबाई पर उनका कितना अधिक विश्वास था। मल्हारराव के सुयोग्य निर्देशन में उन्होंने राज्य-कार्य इतनी अच्छा तरह से संभाल लिया था कि कई महत्वपूर्ण राजकीय पत्र व आज्ञाएं अहिल्याबाई के नाम से ही दी जाने लगी थीं। वे ही राज्य का लगान वसूल करतीं, शासन संभालतीं, न्याय करतीं और मल्हारराव के लिए आवश्यक धन, सेना, गोला-बारूद, रसद, तोप, बैल, चाराचंदी आदि की भरपूर व्यवस्था करती थीं। मल्हारराव के आदेश से हुंडियों का व साहूकारों से पैसे का लेन-देन करती थीं। तत्कालीन मराठा साम्राज्य के एक प्रमुख निर्माता व शक्तिशाली सेनापति मल्हारराव की शिक्षा-दीक्षा के कारण अहिल्याबाई ने एक अच्छे व सफल शासक के लिए आवश्यक कई गुणों व विशेषताओं को आत्मसात कर लिया था। यह अमूल्य पूंजी उनके भावी जीवन के लिए बड़े काम की सिद्ध हुई थी।

अहिल्याबाई को भारत की कितनी अच्छी जानकारी थी, यह इस एक घटना से पता चलता है। एक बार पेशवा ने एक अतिथि को इनके पास भेजा जो काशी जाना चाहते थे। उन्हें मार्ग की कोई जानकारी नहीं थी। पेशवा ने उनका मार्ग-दर्शन करने के लिए अहिल्याबाई को पत्र लिखा था। पत्र पाते ही अहिल्याबाई ने उसी रात को यात्रा की सारी व्यवस्था पूर्ण कर दी। महेश्वर से काशी पहुंचने तक मार्ग में आनेवाले प्रमुख स्थानों, नदियों, घाटों व मार्गों आदि का एक नक्शा उन्होंने स्वयं तैयार कर दिया और साथ ही मार्ग के विभिन्न स्थानों पर स्थित अपने अधिकारियों को भी पत्रों द्वारा आवश्यक आदेश भेजकर, उस अतिथि की पूर्ण व्यवस्था कर दी।

7

वैधव्य

अहिल्याबाई के निर्मल स्नेह, सेवा व श्रेष्ठ जीवन का खण्डेराव पर धीरे धीरे बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उस स्वच्छंद व्यक्ति के जीवन में सुखद परिवर्तन होने लगे। उसके स्वभाव में गंभीरता आ गई और सबसे बड़ी बात यह हुई कि वह राज-काज में भी रुचि लेने लगा। यह देख मल्हारराव के आनंद व संतोष की सीमा न रही। मल्हारराव यही तो चाहता था कि उसका उत्तराधिकारी खण्डेराव एक सुयोग्य शासक बने। पुत्र को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक देख उसने राज्य संबंधी कार्य धीरे धीरे उसे सौंपने शुरू किए। वे दिन तीर और तलवारों के थे। घोड़े की पीठ व रण के मैदान पर अधिकार ही उस युग की राजनीतिक मांग थी। खण्डेराव एक वीर सैनिक व अच्छा तलवारबाज था। बचपन से ही मल्हारराव के साथ कई युद्धों में उसने भाग भी लिया था।

अहिल्याबाई के दिन बड़े सुख व संतोष से बीत रहे थे। अपने सुखी परिवार में दो बच्चों के मोद भरे सहवास में वे स्वर्गिक सुख का अनुभव कर रही थीं। पति का प्रेम व परिवार में सबका स्नेह उन्हें प्राप्त था। लोग उन्हें सम्मान देते थे। राज्य का संचालन भी वे ही कर रही थीं। पर यह सारा सुख विधाता को स्वीकार नहीं था।

सन 1754 की जनवरी में मल्हारराव ने किन्हीं कारणों से सूरजमल जाट को कुम्भेरी के किले में घेर लिया। मराठा सेना के साथ खण्डेराव व अहिल्याबाई भी रणक्षेत्र में थे। दोनों पक्षों की ओर से कुछ महीनों तक रोज घोर युद्ध होता रहा। न जाटों ने हार मानी और न मल्हारराव पीछे हटा। मल्हारराव डटा हुआ था। शत्रु को मात दिए बिना रणक्षेत्र से हटना उसके स्वभाव में नहीं था।

24 मार्च 1754 का दिन निकला। प्रतिदिन की तरह युद्ध शुरू हुआ। दोनों पक्ष तोपों से गोले दाग रहे थे। अपनी सेना का संचालन करता हुआ खण्डेराव युद्धभूमि में घूम रहा था। तभी किले पर से चला एक गोला खण्डेराव को लगा और उसी समय खण्डेराव की मृत्यु हो गई। सेना में हाहाकार मच गया। जाटों ने किले पर से गोले दागने बंद कर दिए। दोनों पक्षों ने युद्ध बंद कर दिया। रणक्षेत्र से मल्हारराव भागा हुआ अपने बेटे के शव के पास आया और बिलख बिलखकर रोने लगा। अपने इकलौते व परमप्रिय बेटे के शव को वह बार बार हृदय से लगाता था। उसकी यह दशा देखी नहीं

जाती थी ।

अहिल्याबाई यह समाचार सुनते ही बेसुध होकर गिर गई । बड़ी कठिनाई से सुधि आने पर बिलखती हुई पति के शव के पास आई । वहां उनके हृदय-द्रावक विलाप के कारण मल्हारराव अपना पुत्र-शोक भूल गए और अहिल्याबाई को सांत्वना देने लगे । वहां उपस्थित सारे लोगों ने भी बहुत समझाया पर उनका दुख कम नहीं हुआ । दुख की साकार मूर्ति बनी अहिल्याबाई पति की ओर एकटक देखती बैठी थीं । उनके हृदय पर जीवन का सबसे कठोर आघात हुआ था । पति के बिना उन्हें अपना जीवन निस्सार लग रहा था । वे एक आदर्श हिंदू नारी थीं, पति ही जिसका सर्वस्व था । उधर खण्डेराव की अंत्येष्टि की तैयारी होने लगी तो उन्होंने भी सती होने की तैयारी शुरू की ।

उन दिनों पति की मृत्यु के बाद सती होने की प्रथा समाज में थी । अहिल्याबाई को सती होने की तैयारी करते देख वहां सबको बहुत दुख हुआ । मल्हारराव की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई । इकलौते जवान बेटे के निधन से कभी न भरनेवाले घाव को लगे अधिक देर नहीं हुई थी और अब उनकी बहू भी जाने की तैयारी कर रही थी ।

कहने को अहिल्याबाई उनकी बहू थी पर वे उन्हें अपनी बेटी से भी अधिक लाड़ली मानकर दुलार करते थे । वे छोटी-सी थीं, तब मंदिर में से भगवान का वरदान मानकर ही तो वे उन्हें अपने घर लाए थे और उनके चरण घर में पड़ते ही कितना आनंद व वैभव छा गया था ! वे कितनी गुणवान व भाग्यवान थीं । वे उनकी सुयोग्य शिष्या भी तो थीं । और सबसे बढ़कर उस होलकर परिवार व राज्य का आधार-स्तंभ भी तो वे ही थीं । यदि वे ही चली गईं तो उनका परिवार, वैभव, राज्य आदि सब कहीं का न रहेगा । ऐसे ही विचार मल्हारराव के मन में उमड़ रहे थे ।

दुख से जर्जर मल्हारराव लड़खड़ाते हुए अहिल्याबाई के पास आए । जीवन भर अनेकों भीषणतम संघर्षों में अचल रहनेवाला वह महावीर, शत्रुओं पर काल के समान टूट पड़नेवाला पराक्रमी योद्धा, समूचे उत्तर भारत में अपने असाधारण रणकौशल से सब पर अपनी धाक जमा देनेवाला वह महान सेनापति व राजनीतिज्ञ एक निर्बल व असहाय बालक के समान बिलख बिलखकर रोता हुआ अहिल्याबाई के सामने खड़ा था । याचना कर रहा था कि वह सती न हो । बड़ी कठिनाई से वह बोल सका—'आता तूच माझा मुलगा आहेस ! तू गेल्यावर मला आधार कोणाचा ?'...(अब तू ही मेरा बेटा है ! तू चली जायेगी तो मुझे कौन संभालेगा ?...?...) ।

मल्हारराव के ये दुख भरे शब्द सुनकर वहां उपस्थित सारे लोग अपने आपको रोक नहीं सके । सब रो पड़े । अहिल्याबाई ने शव पर से दृष्टि हटाकर मल्हारराव की ओर देखा । उनके वे परम स्नेही पिता कैसे दीनहीन बने सती न होने की भिक्षा उनसे मांग रहे थे ।

कुछ क्षणों के बाद मल्हारराव बोला—'बेटी, जिस पुत्र को मैंने इतने लाड़-प्यार से

बड़ा किया था, वह आज मुझे मझधार में छोड़ गया है । क्या तू भी मुझे अनाथ कर चली जायेगी ?... बेटी, अब तो तू ही हम सबका सहारा है ! तेरे बिना हम कहीं के न रहेंगे ।...'

वहां खड़े आत्मीयों ने मल्हारराव को सांत्वना देने का बहुत प्रयत्न किया पर उनका दुख कम नहीं हुआ । वह पुनः कातर हो कहने लगा—'देख बेटा, यह सारा राजपाट तेरा ही है । यह सब तुझे ही संभालना है । अभी तक भी मैंने तुझे ही अपना लड़का समझकर सब कुछ तुझे ही सौंप रखा था । तू रहेगी तो मैं समझूंगा कि मेरा खण्डू अभी जिंदा ही है । तुझे देखकर मैं सारा दुख भूल जाऊंगा ।... बेटी, सती होने का विचार त्याग दे । तू तो महासती है । तू हम सबके लिए, सारी प्रजा के लिए जीवित रह । ...बेटी, तेरे बिना मैं कैसे जिंदा रहूंगा ? अपने छोटे बच्चों की ओर देख ! इस बूढ़े बाप की ओर देख ।. .. सती मत हो ! !...'

इतना कहकर मल्हारराव फिर फूट फूटकर रोने लगा । उसकी वह दीन-हीन दशा देखकर कठोर से कठोर व्यक्ति भी द्रवित हो जाता, फिर अहिल्याबाई का हृदय तो फूल से भी कोमल था । मल्हारराव का विलाप सुनकर वे अपना दुख भूल गईं । वे बड़ी समझदार व दूरदर्शी थीं । अपने कर्तव्य व धर्म का उन्हें पूरा ज्ञान था । मल्हारराव तो नदी के किनारे खड़े जर्जर झाड़ के समान थे । बच्चे छोटे थे । ऐसी स्थिति में उन्हें व अपनी प्रिय प्रजा को कौन संभालेगा व उनकी कैसी दुर्गति होगी—ये विचार उनके हृदय में छा गए । वे सोच रही थीं कि उन्हें उस स्थिति में क्या करना चाहिए ।

उनका मन कह रहा था कि तत्कालीन प्रथा के अनुसार उन्हें सती हो जाना चाहिए । सती हो जाने से धर्म व मोक्ष की प्राप्ति होगी व सर्वत्र कीर्ति होगी और सती नहीं होने पर अधर्म होगा, मोक्ष नहीं मिलेगा व जीवन भर लोकनिंदा सुनने को मिलेगी । ये सारे विचार उनके सामने आए । उन्होंने उस स्थिति में बड़े धीरज व विवेक के साथ सोचा कि यदि मैं सती हो गई तो केवल मुझे ही मोक्ष मिलेगा परंतु जीवित रही तो अपने परिवार व लाखों प्रजाजनों को भी सुख मिलेगा । इस विवेक व दूरदर्शितापूर्ण विचार ने उनकी समस्त उलझनें दूर कर दीं और उन्होंने सामाजिक रूढ़ि, लोक निंदा व मोक्ष आदि की परवाह न कर सती नहीं होने का निर्णय स्वयं ही कर लिया ।

अहिल्याबाई का यह निर्णय सब दृष्टियों से अत्यंत श्रेष्ठ व सबके लिए हितकर था । जीवित रहने पर उन्हें कोई सुख मिलने की संभावना तो थी ही नहीं । सुख के दिन तो बीत ही गए थे । उनके लौटकर आने की कोई संभावना नहीं थी । अपने जीवन द्वारा दूसरों को सुखी करने की भावना ही उनके जीवन में बची थी । इसी भावना के कारण ही उन्होंने जीवित रहने का निर्णय किया था ।

उनका यह निर्णय सुनते ही मल्हारराव को बड़ी शांति मिली । कांपते हाथों से उसने भगवान को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया । वहां उपस्थित सब लोगों ने भी बड़े सुख का अनुभव किया । खण्डेराव की अंत्येष्टि वहां कुम्भेरी दुर्ग के पास रणक्षेत्र में ही हुई ।

खण्डेराव की ग्यारह पत्नियां व उपपत्नियां वहां सती हो गईं। सती होनेवाली कुछ पत्नियां मुसलमान भी थीं।

खण्डेराव की उत्तर-क्रिया मथुरा में विधिपूर्वक की गई। उत्तर-क्रिया में पेशवा ने दस हजार व मल्हारराव ने पच्चीस हजार रुपये खर्च किए। वहां बहुत दान-धर्म किया गया। सूरजमल जाट ने खण्डेराव की मृत्यु पर बड़ा दुख प्रकट किया व मल्हारराव व मालेराव के लिए पोशाक भेजी। दिल्ली से मुगल बादशाह ने भी अहिल्याबाई व मालेराव को एक एक परगना भेंट किया। अहिल्याबाई ने बाद में कुम्भेरी के पास अपने पति की विशाल छत्री बनवाई और उनकी एक प्रतिमा इंदौर में छत्री बनवाकर उसमें स्थापित की। सूरजमल जाट ने पंद्रह हजार रुपये गांव में छत्री की व्यवस्था के लिए दिए।

अहिल्याबाई ने पति की चिता के साथ अपनी भावनाओं व समस्त सुख-सुविधाओं को सदा के लिए भस्म कर दिया। कीमती वस्त्रों, आभूषणों व राजसी सुखों को उन्होंने सदा के लिए त्याग दिया। उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर लिए और अपना शेष जीवन भगवान के चरणों में मानव मात्र की सेवा के लिए पूर्णरूप से अर्पित कर दिया। चिता में अग्नि की ज्वालाएं ऊंची उठ रही थीं पर उनसे कई गुनी तेजस्विता उनके मुखमंडल पर छा गई थी।

अभी तक होलकर परिवार की वे बहू ही थीं पर अब वे देवी बनकर सबके लिए परम वंदनीय बन गई थीं। सती न होकर भी वे महासतियों की श्रेणी में स्थापित हो गई थीं। वे केवल दो बच्चों की मां थीं पर अब वे सबकी मां बन गई थीं। उनका बाद का जीवन इस बात का साक्षी है कि मानव मात्र के शाश्वत सुख व कल्याण और धर्म कार्यों में उनके जीवन का प्रत्येक क्षण काम में आया। उन्होंने अपना जीवन ऐसे महान सांचे में ढाल लिया था कि उन्हीं दिनों पास-दूर के अगणित लोग उन्हें मां व साक्षात देवी के रूप में पूजने लगे थे। समय के साथ लोगों की ये भावनाएं स्थाई हो गईं व बढ़ती ही गईं।

8

दक्खन का आधार गया

पुत्र खण्डेराव की असामयिक मृत्यु के कारण मल्हारराव बहुत दुखी हो गया था। बुढ़ापे में लगी इस निर्मम चोट ने उसे बहुत दुर्बल कर दिया। वह शांति और विश्राम चाहता था। देश में चारों ओर भीषण अशांति छाई हुई थी। ऐसी स्थिति में मल्हारराव के लिए शांति से बैठना संभव ही नहीं था। जनवरी सन 1761 में अहमदशाह अब्दाली ने मरहठों को पानीपत के युद्ध में हराया था। इस हार से मरहठों की सत्ता व प्रभाव को भारी धक्का पहुंचा था। मरहठों की स्थिति बहुत ही नाजुक हो गई थी। मालवा के वे समस्त राजा व जमींदार जिनके राज्यों को मरहठों ने जीता था, वे सब मरहठों को मालवा से खदेड़ने का विचार करने लगे। ऐसे कठिन समय में वयोवृद्ध मल्हारराव ने अविश्राम श्रम कर बड़े साहस व चतुराई से सारी विषम स्थितियों का अकेले सामना किया और थोड़े ही समय में सारे विरोध को शांत कर दिया। मालवा में मरहठों की सत्ता मल्हारराव ने पुन: स्थापित कर दी। यह जटिल कार्य मल्हारराव जैसा व्यक्ति ही कर सकता था। उसके प्रयत्नों से मालवा व उत्तर भारत में मरहठे पुन: शक्तिशाली बन गए और पहले जैसा उनका प्रभाव भी स्थापित हो गया। पेशवा ने मल्हारराव को मालवा के ही नहीं बल्कि समूचे उत्तर भारत के सर्वाधिकार सौंप दिए। कई नई जागीरें भी दीं।

कुछ समय बाद राघोबा पेशवा के साथ महादजी सिंधिया, मल्हारराव होलकर, तुकोजीराव व मालेराव भी उत्तर भारत की राजनैतिक यात्रा के लिए निकले। राह में मल्हारराव अस्वस्थ हो गया। मांगरोल के युद्ध में लगा घाव बड़ा दुखदायक था। आलमपुर में सबको रुकना पड़ा। उसके कान में असह्य पीड़ा होने लगी। बहुत इलाज किया पर कोई लाभ नहीं हुआ।

अंतिम समय पास आ गया था। फिरंगियों को देश से बाहर निकालने और पुत्र खण्डेराव की मृत्यु का बदला लेने की बात मल्हारराव के मन में ही रह गई। ये दोनों बातें उसे बहुत पीड़ा दे रही थीं। महादजी, तुकोजीराव व पौत्र मालेराव उनके पास ही थे। मालेराव को पास बुलाकर वह बोला—'मेरे बाद श्रीमंत पेशवा की चाकरी तुम करना !' फिर मालेराव का हाथ महादजी व तुकोजी के हाथों में देकर वह चिर निद्रा में सो गया। 20 मार्च 1766 को इस प्रतापी पुरुष ने अपने प्राण त्यागे।

मल्हारराव के निधन से अहिल्याबाई व पेशवा को बहुत दुख हुआ । अहिल्याबाई तो अंतिम समय में उनके पास भी नहीं थीं । उनका परम स्नेही व महान पथप्रदर्शक चला गया था । अब राज्य का सारा उत्तरदायित्व उन पर आ पड़ा था । मरहठा साम्राज्य के महान निर्माता, संरक्षक व आधार के रूप में मल्हारराव की ख्याति थी । लोग कहने लगे दक्खन का आधार ही चला गया । और वास्तव में बात भी ऐसी ही थी । पेशवा के इस सबसे शक्तिशाली, प्रभावशाली व स्वामीभक्त सरदार की मृत्यु से मरहठा साम्राज्य की अपूरणीय क्षति हुई । अब मालवा में ऐसा कोई मरहठा सेनापति व नेता नहीं था जो मालवा पर शासन करता व मरहठों की सेना व राजनीति का नेतृत्व कर सारी समस्याओं को निबटाता ।

मल्हारराव की अंत्येष्टि वहां आलमपुर में ही की गई व उनकी वहां छत्री बनाने का कार्य अहिल्याबाई ने शीघ्र ही शुरू कर दिया ।

मल्हारराव का जन्म सन 1693 में एक अत्यंत साधारण परिवार में हुआ था । लेकिन अपने पराक्रम, सूझबूझ, साहस व अनेक गुणों के कारण वह तत्कालीन उत्तर भारत का एक प्रभावी व शक्तिशाली व्यक्ति बन गया था । उसके स्वामी पेशवा और पूना से दिल्ली तक के राजा महाराजा व मुगल सम्राट भी उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे । पेशवा तो उस पर बहुत ही प्रसन्न व संतुष्ट थे क्योंकि मल्हारराव के कारण ही समूचे उत्तर भारत में मरहठों का साम्राज्य स्थापित हुआ था । अत: पेशवा मल्हारराव को अपना सम्माननीय सहयोगी मानते थे । राजागण व दिल्ली का बादशाह भी उसे सोना-चांदी, रुपया व अन्य मूल्यवान भेंटें देते रहते थे । उसकी स्थिति दिन-पर-दिन सुदृढ़ ही होती गई । उसकी सेनाएं पूरे भारत में सक्रिय थीं और सर्वत्र उसे अपूर्व सफलता मिल रही थी ।

तत्कालीन उत्तर भारत के विभिन्न कूटनीतिक दांवपेंचों का वह प्रमुख सूत्रधार था । पेशवा व मुगल सम्राट का वह प्रमुख आधार था । छोटे-मोटे राजाओं ही नहीं, बल्कि पेशवा व मुगल बादशाह तक के लिए वह धन की व्यवस्था करता था । वह श्रेष्ठ योद्धा व घुड़सवार था और तीर, तलवार व भाला चलाने में अत्यंत कुशल था । उसकी वीरता की कई कथाएं प्रसिद्ध हैं । वह एक सैनिक था व जीवन में अधिकतर युद्ध क्षेत्रों में ही रहा । किसी सैनिक की वीरता देखकर वह खुश हो कहता—इसकी ढाल रुपयों से भर दो !

मल्हारराव ने कई निर्माण कार्य भी कराए थे । सन 1741 में उसने इंदौर में खान नदी के किनारे अपना विशाल राजबाड़ा बनवाया था और इंदौर गांव को भी बसाने का कार्य किया था । उज्जैन व आसपास के व्यापारियों, साहूकारों व अन्य लोगों को सहायता व संरक्षण देकर उसने इंदौर का विकास किया था । मल्हारराव के प्रयत्नों से इंदौर बहुत तेजी से बढ़ गया । मालवा में मराठा राज्य के व होलकर राज्य के संस्थापक वीरवर मल्हारराव का नाम इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण है ।

9

पुत्र मालेराव की मृत्यु

मालेराव बड़ा उग्र, चंचल व निकम्मा लड़का था। देवी अहिल्याबाई का वह पुत्र था और होलकर राज्य का भावी राजा, पर उसमें उस महत्वपूर्ण पद के लिए आवश्यक गुणों का पूर्ण अभाव था। अपने इस दुर्गुणी पुत्र के कारण अहिल्याबाई बहुत दुखी व चिंतित थीं। उसे राह पर लाने के उन्होंने बहुत प्रयत्न किए पर कोई लाभ नहीं हुआ।) अहिल्याबाई ने मालेराव को सीख से भरे कुछ पत्र भी भेजे थे। वे मूल पत्र मराठी में हैं। एक पत्र के हिंदी अनुवाद का कुछ अंश इस प्रकार है—'सरदारी का विचार कर राज्य चलाना चाहिए। विवेक के द्वारा काम-काज में चित्त लगाकर, जिस प्रकार कैलाशवासी (मल्हारराव) राज्य करते आए, उसी प्रकार तुम्हारी भी कीर्ति हो, वही तुम्हें करना चाहिए। ...दूरदर्शिता से काम कर पितामह से भी अधिक कीर्ति प्राप्त करने में ही तुम्हारा गौरव है।...'

इस पत्र से यह स्पष्ट है कि अहिल्याबाई को अपने वंश व कीर्ति का, कर्तव्य का व राज्य के हितों का कितना अधिक ध्यान था। पर मालेराव ने उनके इन महत्वपूर्ण उपदेशों पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने थोड़ी भी गंभीरता या उत्तरदायित्व अपने आचरण में प्रकट नहीं किया। राज-काज की ओर उसका ध्यान कभी नहीं रहा। अहिल्याबाई को ही सारा काम संभालना पड़ता था।

23 अगस्त 1766 को मालेराव का राजतिलक हुआ व पेशवा की ओर से उसे सनद प्राप्त हुई। पर पेशवा ने राज्य का वास्तविक अधिकार अहिल्याबाई को ही सौंपा क्योंकि वह अच्छी तरह से जानता था कि राजकाज मालेराव के वश की बात नहीं है। अधिकार पाने के बाद भी मालेराव में कोई शुभ परिवर्तन नहीं हुआ। उलटा उसका अविवेकीपन और अधिक बढ़ गया। उसका अधिकांश समय नशा करने और पशुओं के साथ बीतने लगा। हाथी-घोड़े आदि पशुओं को उसने बड़ी संख्या में पाल रखा था।

प्रजा के साथ मालेराव का व्यवहार बहुत खराब था। प्रजा को वह बहुत कष्ट देता था। विशेषकर ब्राह्मणों को सताने में उसे बड़ा मजा आता था। उसके इन कारनामों से संबंधित कई कहानियां बहुत प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणों को वस्त्र, लड्डू, दक्षिणा आदि देने के पात्रों में वह बिच्छू-सांप आदि रखवा देता था। फिर पात्रों में से वह दान निकालने के

लिए ब्राह्मणों को कहा जाता था। वे बर्तनों में हाथ डालते तो उन्हें बिच्छू व सांप काट लेते। उन बेचारों को दर्द से तड़पते व रोते देख मालेराव को बड़ी खुशी होती।

सत्तासीन होने के थोड़े ही दिन बाद मालेराव बीमार पड़ा। अहिल्याबाई ने इलाज में कोई कसर नहीं छोड़ी। पूजा-पाठ, जंतर-मंतर सब कराया गया। अहिल्याबाई ने दिन-रात एक कर दिया पर वह बच नहीं सका। मालेराव का केवल बाईस वर्ष की आयु में ही स्वर्गवास हो गया। उसकी दोनों पत्नियां सती हो गईं। मालेराव ने दस माह से भी कम राज्य किया।

अपने इकलौते बेटे के निधन से अहिल्याबाई को असह्य दुख हुआ। आखिर वह उनका बेटा था। उन्होंने सब कुछ त्याग कर कहीं दूर चले जाने का विचार किया पर उनके विवेक ने उन्हें शीघ्र ही सावधान कर दिया। जिस प्रजा के हित के लिए उन्होंने सती होना अस्वीकार किया था, उसी प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य को सामने रखकर उन्होंने अपने आपको फिर संभाल लिया। आंसू पोंछ डाले और सबको चकित कर देने वाले धीरज, साहस व विवेक का परिचय देकर जीवन के कठोर कर्मक्षेत्र में पुन: कार्यरत हो गईं। अपने पुत्र की स्मृति में उन्होंने एक सुंदर छत्री का निर्माण इंदौर में करवाया।

अहिल्याबाई द्वारा अपने इस पुत्र मालेराव को हाथी के पैरों से कुचलवा देने की एक लोककथा बहुत प्रसिद्ध है। इस लोककथा के अनुसार बहुत समझाने-बुझाने पर भी मालेराव ने प्रजा को सताना नहीं छोड़ा तो अहिल्याबाई ने उसे हाथी के पैरों तले देकर मरवा डाला। इस लोककथा से यह स्पष्ट है कि अहिल्याबाई प्रजा से, अपने पुत्र से भी अधिक स्नेह करती थीं। अहिल्याबाई की धर्म व न्याय भावना के प्रति लोगों में कितनी श्रद्धा-भक्ति थी, वह इस कथा से सहज स्पष्ट है।

10

राघोबा को करारी मात

अहिल्याबाई का जीवन तीन भागों में बांटा जा सकता है—बचपन, वैवाहिक जीवन व शासन काल। सन 1725 में जन्म के बाद से 1733 तक उनका जीवन बचपन में माता-पिता के पास बीता। 1733 में विवाह के कुछ वर्षों बाद वे ससुराल आईं। अपनी गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाते हुए राजकाज की दीक्षा व शासन का अनुभव उन्हें इस अवधि में प्राप्त हुआ। 1754 में कुम्भेर के युद्ध में पति खण्डेराव को वीरगति प्राप्त हुई। वैवाहिक जीवन के इस दुखद अंत के साथ ही उन पर प्रशासन का उत्तरदायित्व आ गया और 1766 में श्वसुर मल्हारराव की मृत्यु के बाद राज्य का संपूर्ण भार उन्हें ही संभालना पड़ा। 1795 में अहिल्याबाई का स्वर्गवास हुआ। 1766 से 1795 तक का यह तीसरा भाग उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण, गौरवपूर्ण व स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है।

पति, श्वसुर व पुत्र की मृत्यु के बाद अहिल्याबाई के राज्य व वैभव को हड़पने के कुचक्र कुछ स्वार्थी व प्रपंची व्यक्तियों ने शुरू कर दिए। उनकी दुष्ट योजना यह थी कि उनके पक्ष के किसी बालक को अहिल्याबाई गोद लेकर उसे सारे अधिकार सौंप दे। इस प्रकार अहिल्याबाई को सत्ता से हटाकर अपनी पौ-बारह करने की उनकी योजना थी। पर अहिल्याबाई की चतुराई के सामने उनकी सारी योजनाएं धरी रह गईं।

दत्तक लेने की बात प्रमुख रूप से दो व्यक्तियों द्वारा उठाई गई थी। एक था राघोबा पेशवा और दूसरा था गंगाधर यशवन्त चन्द्रचूड़। राघोबा दादा तो होलकरों के स्वामी ही थे। चन्द्रचूड़ होलकर राज्य का वर्षों पुराना एक प्रमुख अधिकारी था। अहिल्याबाई को एक अबला समझ कर इन दोनों ने मिलकर इस स्वर्ण अवसर को खोना उचित नहीं समझा। उनके इस षड्यंत्र से संबंधित यह घटना बहुत प्रसिद्ध है।

राघोबा ने सोचा, आखिर अहिल्याबाई है तो एक महिला ही। फिर इस समय पुत्र-शोक में डूबी हुई है। विधवा है, असहाय है। हम जो चाहेंगे, वही होगा। इसी समय चन्द्रचूड़ का गुप्त पत्र उसे मिला। पत्र में लिखा था—होलकर राज्य इस समय स्वामीहीन है। तुरंत आओ। बड़ा अच्छा मौका है।

घर के भेदी का यह निमंत्रण पाकर राघोबा को होलकर राज्य अपनी मुट्ठी में दिखाई

देने लगा। उसने एक विशाल सेना साथ ली और होलकर राज्य का स्वामी बनने का सपना देखते हुए पूना से इंदौर के लिए तेजी से रवाना हो गया। पर उसके इंदौर पहुंचने के बहुत पहले यह समाचार इंदौर पहुंच गया था।

राज्य की प्रजा चाहती थी कि अहिल्याबाई को ही सारा राज-काज चलाना चाहिए क्योंकि वे ही राज्य की सच्ची अधिकारिणी हैं। देवी कितनी अच्छी शासिका हैं, इसका अनुभव वे अच्छी तरह से कर चुके थे, अत: उनके ही शासन में रहने के लिए वे उतावले हो रहे थे। इतना ही नहीं, उन लोगों से लड़ने-मरने के लिए वे तैयार हो गए जो यह कहते थे कि अहिल्याबाई को राजपाट त्याग किसी बालक को गोद लेना चाहिए।

अहिल्याबाई पुत्र-शोक में डूबी थीं पर इन षड्यंत्रों का पता चलते ही उन्होंने अपने आंसू पोंछ डाले। सारे दुखों को दूर कर समस्त संकटों से जूझ कर उन पर विजय पाने के आत्मविश्वास के साथ वे कार्यरत हो गईं। उन्होंने घोषणा कर दी कि होलकर राज्य की संपूर्ण सत्ता उन्होंने अपने हाथों में ले ली है।

उनकी यह घोषणा होते ही प्रजा में आनंद व संतोष की लहर दौड़ गई। प्रजा देवी को अच्छी तरह पहचानती थी। सब जानते थे कि सत्ता या धन का उन्हें कोई लोभ नहीं है। सबकी यही मान्यता थी कि उन्होंने तो अपना कर्तव्य व धर्म समझ कर ही यह निर्णय लिया है। सब अच्छी तरह से जानते थे कि अहिल्याबाई कितनी निस्वार्थी, परोपकारी, धार्मिक व राज कार्य में निपुण हैं और उनके शासन में जनता को कितना लाभ व सुख मिलेगा। देवी की प्रजा-वत्सलता व न्यायप्रियता की कीर्ति-कथाएं दूर दूर तक फैल चुकी थीं।

राघोबा व चन्द्रचूड़ के कुटिल षड्यंत्रों पर देवी को बड़ा क्रोध आया। वे गरज कर बोलीं—'यह वैभव मेरे पुरखों ने हंसी-मसखरी में या नाच-गाकर प्राप्त नहीं किया है। उन्होंने अपना खून-पसीना एक कर व तलवार के जोर पर यह राज्य स्थापित किया है। मैं एक अबला हूं, असहाय औरत हूं, ऐसा कोई न समझे। हाथ में भाला लेकर सामने अड़ जाऊंगी तो सारी योजना धरी रह जायेगी — मैं पेशवा के अधीन रहने को सदा तैयार हूं पर किसी ने मेरे राज्य की ओर आंख उठाई तो वह कभी भी सफल नहीं होगा।'

फिर उन्होंने अपने लोगों को एकत्रित कर कहा—मैंने यदि राज्य को नहीं संभाला तो प्रजा को बहुत कष्ट होंगे। वे लोग प्रजा के साथ न जाने कैसा व्यवहार करेंगे। जिन लोगों ने इस राज्य पर शासन किया है, उनमें से एक की मैं पुत्रवधू, दूसरे की पत्नी व तीसरे की माता हूं। इस कारण मेरा अधिकार ही नहीं, बल्कि कर्तव्य है कि राज्य का सारा कार्य अपने हाथों में लेकर प्रजा को सुखी करूं। दत्तक तय करने का अधिकार भी मेरा ही है।

उन्होंने समस्त आवश्यक कार्यवाही तुरंत शुरू कर दी। उनके परम विश्वासपात्र सहयोगी तुकोजी को तुरंत बुलवाया गया जो दूर कहीं गए थे। भोंसले, गायकवाड़,

दामाड़े आदि के पास सहायता के लिए गुप्त संदेश सांडनी सवारों के साथ तुरंत रवाना किए। इन सबने अहिल्याबाई को पूरी सहायता देने का वचन दिया। माधवराव पेशवा के पास भी सारी जानकारी भेज दी। माधवराव बड़ा न्यायप्रिय व नीति निपुण व्यक्ति था। उसने भी अहिल्याबाई का ही पक्ष लिया। महाप्रतापी महादजी शिन्दे ने राघोबा को स्पष्ट कह दिया कि ऐसे काम में हमारा सहयोग आपको कदापि नहीं मिलेगा।

बाहर की यह सारी व्यूह-रचना करने के साथ साथ उन्होंने अपनी सैनिक व अन्य तैयारियां भी पूर्ण कर लीं। तुकोजीराव के सेनापतित्व में राज्य की सारी सेना तैयार थी। अहिल्याबाई ने एक और अभिनव कार्य किया। महिलाओं की एक सेना अपनी देखरेख में उन्होंने तैयार की और उसे युद्ध का प्रशिक्षण देकर शस्त्रों सहित सुसज्जित कर दिया। रसद व अन्य रण-सामग्री भी अच्छी मात्रा में एकत्रित कर ली। रणक्षेत्र में राघोबा की सेना को करारी मात देने के लिए वे अविश्राम श्रम कर रही थीं। उनकी कर्मठता व तेजस्विता देखकर प्रजा व सेना में अपूर्व उत्साह छा गया था। तभी समाचार मिला कि भोंसले व गायकवाड़ की सेनाएं सहायता के लिए आ गई हैं। होलकर राज्य की सेना भी तैयार खड़ी थी।

मद में चूर, सपनों में खोया, राघोबा पचास हजार सैनिकों सहित उज्जैन तक आ धमका। विश्वासघाती चन्द्रचूड़ भी साथ था। अहिल्याबाई ने सेना सहित तुकोजीराव को तुरंत उज्जैन जाने की आज्ञा दी। अहिल्याबाई के चरणों में शीश झुका तुकोजीराव बड़ी तेज गति से उज्जैन पहुंच गया। क्षिप्रा के उस पार राघोबा की व इस पार तुकोजी की सेना खड़ी थी। तुकोजी ने राघोबा के पास संदेश भेजा—'सावधान, तुम्हारी सेना क्षिप्रा के इस पार आते ही हमारी तलवार चलेगी, इस बात का ध्यान रख कर ही आगे कदम बढ़ाना!'

यह संदेश पाकर राघोबा थोड़े विचार में पड़ गया। तभी अहिल्याबाई का एक पत्र भी राघोबा को मिला। वह पत्र पढ़ते ही राघोबा का सारा उत्साह एकदम ठंडा पड़ गया और होलकर राज्य हड़पने का उसका सपना भी पूरी तरह टूट गया। वह पत्र अहिल्याबाई की अद्भुत प्रतिभा, चतुराई, नीति निपुणता और राजनैतिक दूरदर्शिता का अनुपम उदाहरण है।

उस पत्र में अहिल्याबाई ने लिखा था—'आप सेना लेकर मेरा राज्य छीनने आए हैं। पर आपकी यह इच्छा कभी भी पूर्ण नहीं होगी। आपने मुझे अबला समझा है। पर मैं कैसी अबला हूं, इसका पता आपको रणक्षेत्र में चलेगा। आपसे शीघ्र ही रणक्षेत्र में भेंट होगी। मेरे अधीन महिलाओं की सेना आपका सामना करेगी। मैं हार गई तो कोई भी मेरी हंसी नहीं उड़ायेगा। और आप हार गए तो कहीं भी मुंह दिखाने लायक नहीं रहोगे। फिर एक अबला पर आक्रमण करने से आपके नाम पर जो कलंक लगेगा, वह कभी मिट नहीं सकेगा। इन सारी बातों का विचार कर लड़ाई का मौका नहीं लाओ तो

ही अच्छा है । इसी में आपका हित है !'

मरहठों का झंडा अटक के पार गाड़ने वाला नंबरी कूटनीतिज्ञ राघोबा दादा अहिल्याबाई का वह पत्र पाकर बड़ी चिंता में पड़ गया । होलकर राज्य डाल पर पके आम के समान सरलता से प्राप्त हो जायेगा, यह उसने सोचा था । पर यहां तो लेने के देने पड़ गए । अहिल्याबाई जिसे वह एक साधारण महिला समझता था, उसे पैदल मात देने वाली निकली । राघोबा ने देखा कि उसकी सेना से शक्तिशाली सेना उस पार तैयार खड़ी थी । गुप्तचरों द्वारा अहिल्याबाई की सारी तैयारियों का पता उसे चल चुका था । पेशवा व अन्य कई मरहठे सरदार भी उसके विरोधी थे । लड़ने में पराजय और बिना लड़े वापिस लौटने में बड़ी बदनामी साफ दिखाई दे रही थी । सारी परिस्थिति समझ, सब तरह से अपनी बाजी जाते देख राघोबा ने संदेश भिजवाया—'मैं कोई लड़ने नहीं आया । मैं तो आपके इकलौते बेटे मालेराव की दुखद मृत्यु का समाचार सुनकर शांति संवेदना प्रकट करने आया हूं । आप सब व्यर्थ की गलत धारणाएं बना बैठे हो । इसे क्या कहा जाए ।'

अहिल्याबाई का उत्तर आया—'शोक प्रकट करने आए हैं तो इतनी बड़ी सेना क्यों साथ लाए हैं ? क्या यह उचित व आवश्यक है ? शोक ही प्रकट करना है तो आप अकेले पालकी में बैठकर आइए । हम, हमारा घर, सेना व धन-दौलत आपसे कोई अलग नहीं हैं । हमारा घर आपका ही है । आप पहले जैसे ही आइए और आनंद से रहिए ।'

राघोबा बाजी हार चुका था । एक पालकी में बैठ पांच-सात सरदारों को साथ लेकर वह तुकोजी के पास आया । तुकोजी ने आगे बढ़कर आदरपूर्वक राघोबा के पैरों में सिर रख कर प्रणाम किया । सब साथ इंदौर आए । अहिल्याबाई ने बड़े आदर सहित राघोबा पेशवा का स्वागत-सम्मान किया । दोनों की अच्छी तरह से भेंट चर्चा हुई । बीती हुई घटना की थोड़ी भनक भी देवी ने पड़ने नहीं दी । जैसे कुछ हुआ ही न हो । पूरे एक महीने भर तक अहिल्याबाई ने राघोबा का आतिथ्य किया । राघोबा भी देवी को अच्छी तरह से पहचान गया था सो उसने भी राज्य व दत्तक प्रकरण के बारे में कोई चर्चा ही नहीं की । फिर उनसे विदा लेकर उज्जैन होता हुआ वह पूना लौट गया । उसका दूसरा षड्यंत्री साथी गंगाधर चन्द्रचूड़ भी लज्जित हो तीर्थ-यात्रा के बहाने पूना के लिए रवाना हो गया ।

इस तरह अपने पर आए एक भीषण संकट को अहिल्याबाई ने अपनी प्रतिभा व चतुराई से दूर कर दिया । राज्य में खुशियां छा गईं । दूर दूर तक अहिल्याबाई की कीर्ति-पताका ऊंची फहराने लगी ।

11

अहिल्याबाई और महेश्वर

पति और पुत्र की मृत्यु के बाद अहिल्याबाई बहुत दुखी हो गई थीं। उन्हें अपना जीवन भार स्वरूप लगने लगा था। मन की शांति के लिए वे हिमालय में चली जाना चाहती थीं पर विवेक ने उन्हें रोक दिया। कर्तव्यनिष्ठा के कारण जीवन-संग्राम में वे पुन: कार्यरत हो गईं। इंदौर से मालेराव की स्मृतियां जुड़ी थीं। इसलिए वे इंदौर में नहीं रहना चाहती थीं। अत: अपने निवास व राजधानी के लिए किसी उपयुक्त स्थान की खोज में वे अपने राज्य में स्वयं निकल पड़ीं। अत्यंत धार्मिक होने के कारण किसी तीर्थस्थान का ही वे चुनाव करना चाहती थीं।

पवित्र नदी नर्मदा को वे बहुत मानती थीं। नर्मदा के किनारे ही उन्होंने योग्य स्थान की खोज शुरू की। निमाड़ में नर्मदा तट पर बसा पुराणों में वर्णित मरदाना नाम का प्राचीन ग्राम अहिल्याबाई को पसंद आया। पर ज्योतिषियों ने मरदाना को राजधानी के लिए अच्छा नहीं बताया। फिर महेश्वर को सब दृष्टियों से श्रेष्ठ मानकर उसे अपनी राजधानी व निवास स्थान बना लिया। यह सन 1766 की बात है। उनके इस निर्णय के कारण सोया हुआ महेश्वर जाग गया। उसके भाग्य भी जाग गए। इसके बाद जीवन के अंतिम क्षणों तक, पूरे तीस वर्ष, वे अधिकतर महेश्वर में ही रहीं। इस अवधि में महेश्वर ने बहुत अधिक प्रगति की। अहिल्याबाई ने महेश्वर के प्राचीन व गौरवपूर्ण इतिहास में कुछ स्वर्णिम पृष्ठ और जोड़ दिए।

मालवा का उज्जैन व निमाड़ का महेश्वर अति प्राचीन व अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण नगर हैं। ये दोनों नगर इस देश के ही नहीं बल्कि मानव जाति के इतिहास से अत्यंत निकट से संबंधित व पुरातत्व की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस देश के प्राचीनतम साहित्य में अवन्ती (उज्जैन) तथा माहिष्मती (महेश्वर) का अनेक स्थानों पर गौरवपूर्ण उल्लेख है। रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध व जैन धर्म-ग्रंथों आदि में तथा अनेक प्रसिद्ध विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरणों में इन नगरों का सर्वत्र उल्लेख है। रामायण व महाभारत काल में माहिष्मती एक प्राचीन व समृद्ध नगरी थी। अपनी दिग्विजय यात्रा के समय अर्जुन यहां आया था।

महेश्वर का प्राचीन नाम माहिष्मती है। प्राचीन काल से ही यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान रहा है। हरिवंश के अनुसार राजा महिष्मान ने इस नगरी को बसाया था। पुराणों तथा इतिहास में वर्णित अनेक प्रसिद्ध नरेशों व प्रतिभाशाली व्यक्तियों के गौरवपूर्ण कार्यों से इस नगरी का संबंध रहा है। पुराणों में प्रसिद्ध राजा सहस्त्रार्जुन द्वारा शासित अनूप देश की राजधानी भी यहीं थी। राजा सहस्त्रबाहु के कारण इस नगर को "सहस्त्रबाहु की बस्ती" भी कहते हैं। पौराणिक व ऐतिहासिक कथाओं से महेश्वर का इतिहास परिपूर्ण है।

कविकुलगुरु कालिदास ने भी रघुवंश में माहिष्मती और नर्मदा का उल्लेख किया है। श्रीमद् शंकराचार्य और मंडन मिश्र का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ भी इसी नगरी में हुआ था। पौराणिक काल के समान ऐतिहासिक काल में भी यह नगरी बहुत प्रसिद्ध रही। सुप्रसिद्ध हैहयवंशी राजाओं का यहां राज्य था। चालुक्यों व परमारों के राज्य में भी यह एक प्रसिद्ध नगरी थी। फिर मांडू के सुलतानों ने व 1422 में गुजरात के सुलतान अहमदशाह ने इसे जीता। अकबर के शासनकाल में भी महेश्वर एक प्रमुख स्थान था। 1730 के आसपास मल्हारराव होलकर ने मुगलों से छीनकर महेश्वर व आसपास के क्षेत्र पर अधिकार किया था। महेश्वर का महत्व समझकर मल्हारराव ने सन 1745 में एक राजकीय आज्ञा द्वारा महेश्वर का विकास करने के लिए व्यापारियों, बुनकरों, सुतारों, मजदूरों आदि को मकान, जमीन आदि की सुविधाएं देने की घोषणा की थी।

भारत का प्राचीनतम व पुनीत तीर्थस्थान महेश्वर देश की सात पवित्र नदियों[1] में से एक नर्मदा के तट पर स्थित है। नर्मदा का माहात्म्य व गौरव देश के धार्मिक साहित्य में बहुलता से है। अनादि काल से इस देश की जनता नर्मदा को बहुत मानती आ रही है। इस नदी के दोनों किनारों पर अगणित तीर्थस्थान हैं। सारे संसार में यही एक नदी है जिसकी पैदल परिक्रमा धार्मिक लोग करते हैं। अहिल्याबाई भी नर्मदा को बहुत मानती थीं। उनकी अगाध श्रद्धा के कारण उनके जीवन का बड़ा भाग नर्मदा तट पर ही बीता।

महेश्वर का इतिहास बड़ा रोचक है। कालचक्र ने इस नगरी को कई बार सुलाया और जगाया। कई बार इस नगरी ने अच्छे व बुरे दिन देखे। यह क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है। प्रमुख विशेषता यही रही कि यहां सतत बहने वाली नर्मदा के समान इस नगरी की जीवन-धारा कभी भी लुप्त नहीं हुई। अहिल्याबाई ने इस नगरी को अपूर्व महत्व व नवजीवन प्रदान किया।

प्राचीन काल में उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाले राजमार्ग पर स्थित होने के कारण महेश्वर का भौगोलिक महत्व बहुत अधिक था। यह उत्तर व दक्षिण भारत के

---

1. गंगेच यमुनैचैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

आवागमन का एक प्रमुख द्वार था। इसी कारण देश के राजनीतिक, सामाजिक व व्यावसायिक क्षेत्रों में महेश्वर का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

अहिल्याबाई को महेश्वर बहुत प्रिय था। वहां नर्मदा का पाट विस्तृत व दर्शनीय है। नर्मदा वहां बहुत गहरी भी है। प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनभावन है। अहिल्याबाई ने यहां कई प्राचीन मंदिरों, घाटों आदि का जीर्णोद्धार कराया। कुछ मंदिर, घाट व कई मकान बनवाए। ये मकान उन्होंने विद्वानों, ब्राह्मणों व बुनकरों आदि को भेंट किए। बेटी मुक्ताबाई व जमाई यशवंतराव की सुंदर छत्रियां भी बनवाईं।

अहिल्याबाई के कारण अनेक धार्मिक व राजनीतिक कार्यों का एक महत्वपूर्ण केंद्र महेश्वर बन गया। देश के चुने हुए विद्वानों, धर्माचार्यों, ज्योतिषियों, पौराणिकों, कीर्तनकारों आदि को आदर सहित बुलाकर महेश्वर में उन्हें बसाया था। उन्हें मकान, जमीन, धन आदि की पूरी सहायता दी थी। विद्वानों को उन्होंने पूरा आदर व आश्रय दिया था। संस्कृत की पाठशाला शुरू की। विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ आदि देवी की ओर से नित्य होते थे। इन कार्यों को करने वाले सैकड़ों ब्राह्मण महेश्वर में ही बस गए थे। नर्मदा के घाटों, मंदिरों व देवी के निवास-स्थान पर धार्मिक कार्यों की भारी हलचल रोज मची रहती थी। पूजा-पाठ व शंख-घड़ियालों की मधुर ध्वनि महेश्वर में सदा बनी रहती थी। अहिल्याबाई द्वारा ब्राह्मणों व गरीबों को दान-धर्म व भोजन आदि के कार्यक्रम नित्य चलते ही रहते थे। राजनीतिज्ञों व सेना की हलचल से महेश्वर का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया था।

अहिल्याबाई ने देश भर में मंदिरों, घाटों, कुओं, सरायों आदि का बड़ी संख्या में निर्माण कराया था। इस कारण शिल्पी, राज़, कारीगर, मूर्तिकार आदि बड़ी संख्या में महेश्वर में बस गए थे। इन सबको देवी ने बड़ा प्रोत्साहन देकर आश्रय प्रदान किया। महेश्वर की प्रसिद्धि इन सबके कारण पूरे देश में फैल गई। शिल्प व अन्य कलाओं को भी अपूर्व प्रोत्साहन मिला। अनेक लोगों को पर्याप्त धन दे विभिन्न धर्म-ग्रंथों की नकल करवाकर उन पोथियों को सुयोग्य पात्रों को वे दान में देती थीं।

देवी ने महेश्वर में वस्त्र उद्योग के विकास के लिए भी स्मरणीय कार्य किया। देश के विभिन्न स्थानों से उन्होंने बुनकरों को बुलाकर महेश्वर में बसाया। उन्हें मकान, धन आदि की सहायता दी और उनके द्वारा बनाई गई साड़ियों को बड़ी संख्या में खरीदकर उस धंधे को बढ़ाया। विभिन्न अवसरों पर साधारण से लेकर महत्वपूर्ण परिवारों की महिलाओं को वे महेश्वर में बनी साड़ियां व अन्य कपड़े भेंट करती थीं। उनके समय में महेश्वर में बनी साड़ियां देश भर में प्रसिद्ध हो गई थीं। देवी के प्रोत्साहन व सहयोग के कारण महेश्वर में बढ़िया और कला पूर्ण वस्त्र बनने लगे थे। बुनकरों का धंधा बहुत अच्छा चलता था और वे संपन्न और सुखी थे। वे स्वयं भी महेश्वर में बनी साड़ियां ही पहनती थीं। उनके इस अपूर्व संरक्षण के कारण महेश्वर का वस्त्रोद्योग इन दिनों भी

प्रसिद्ध है।

'महाराष्ट्र के तत्कालीन सुप्रसिद्ध कवि व गायक अनन्तफन्दी ने अपनी एक कविता में महेश्वर का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। मूल कविता मराठी में है। उसका हिंदी भावानुवाद इस प्रकार है –

'महेश्वर नर्मदा के तट पर बसा है। वहां कई घाट हैं। ऊंचे मंदिर हैं। नर्मदा वहां बहुत गहरी है। इसके कारण नगर कैलाश के समान सुहावना लगता है। वहां के घर व हवेलियां सुंदर हैं।...अहिल्याबाई की कीर्ति के कारण कई लोग महेश्वर आते हैं और उनके दर्शन कर व उनका दान पुण्य देखकर कृतार्थ होते हैं। महेश्वर में अपार संपत्ति है। शहर गुलजार हैं। बड़े बड़े बाजार हैं। बड़ी दुकानें व कई लखपति साहूकार हैं। दुकानें सब तरह के माल से भरी हैं। सब चीजें बहुत सस्ती हैं। किसी भी चीज का अकाल नहीं है।...अहिल्याबाई अपनी प्रजा का संतान के समान पालन करती हैं। प्रजा की सुरक्षा व सुविधाओं का वे पूरा ध्यान रखती हैं। गरीबों के लिए उन्होंने सदा व्रत व अन्न-सत्र चालू किए हैं। देश के सब भागों से गरीब, विद्वान, साधु-संत आदि महेश्वर आते हैं और देवी सब को दान-धर्म करती हैं। वे नित्य शिवजी का पूजन कर बहुत दान-धर्म करती हैं।...'

इस वर्णन से स्पष्ट है कि एक साधारण गांव महेश्वर देवी अहिल्याबाई के कारण एक समृद्ध और प्रसिद्ध नगरी बन गई थी। होलकर राज्य की राजधानी होने के कारण देश के अन्य राज्यों के राजनीतिज्ञों का वहां आवागमन बना ही रहता था। महेश्वर से पूना का बहुत निकट का संबंध था। कई राज्यों के वकील महेश्वर में स्थाई रूप से रहते थे। पास-दूर के कई लोग देवी अहिल्याबाई के दर्शन करने महेश्वर आते रहते थे। इन सबके कारण महेश्वर का उन दिनों महत्व बहुत बढ़ा हुआ था।

महेश्वर में मंदिर, घाट, किला, छत्रियां, नर्मदा का पाट आदि दर्शनीय स्थानों की कमी नहीं है पर वहां सबसे दर्शनीय स्थान देवी अहिल्याबाई का निवास स्थान है। संसार भर के किसी भी राजा या रानी का निवास स्थान इतना छोटा व सरल-साधारण नहीं होगा, जितना देवी का है। अहिल्याबाई एक वैभव संपन्न राज्य की सर्वशक्तिमान महारानी थीं, पर उनका निवास स्थान कोई विशाल व गगनचुंबी राजमहल नहीं है। उसे महल तो कह ही नहीं सकते। वह तो एक सरल, सादा, आडंबरहीन घर ही है। वह दो मंजिला घर ऐसा लगता है जैसे किसी साधारण नागरिक का ही घर हो। तब महेश्वर में ही उस घर से बड़ी हवेलियां थीं। इस घर में सर्वत्र मंदिर जैसी सात्विकता व पवित्रता है। किसी तीर्थ स्थान या मंदिर में मिलने वाली अनुपम दिव्य शांति इस घर में सर्वत्र सहज सुलभ है। शृंगार, विलास आदि का यहां कहीं भी कोई नाम नहीं है।

इस घर में इतने बड़े राज्य की स्वामिनी अहिल्याबाई अपने मंत्रियों, सरदारों, राजनीतिज्ञों व अन्य लोगों से चर्चा करती थीं। अनेक राष्ट्रीय व दूरगामी महत्व के निर्णय

उन्होंने अपने इसी मकान में लिए थे। इस घर के एक कमरे में देवी का पूजा स्थान था। देवी जिन शिव लिंगों व देवताओं का नित्य पूजन करती थीं, वे सब भी अब इस घर के पास ही एक अन्य कमरे में प्रतिष्ठित हैं। महेश्वर जाने वाले लोग देवी द्वारा पूजित इन देवताओं के दर्शन बड़ी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करते हैं। इस घर के आंगन में एक तुलसी वृंदावन है। घर के दरवाजे से लगी हुई सीढ़ियां नर्मदा के घाट पर जाती हैं। इसी मार्ग से अहिल्याबाई प्रतिदिन नर्मदा स्नान करने जाती थीं। इस घर में एक बड़ा तलघर भी है। घर के पास ही एक बड़ा बाग था जिसमें बड़ी संख्या में तुलसी के पौधे व फूलों के झाड़ थे।

अहिल्याबाई के महान जीवन के समान ही उनका यह निवास स्थान अत्यंत सरल, साधारण, प्रेरक, महान व दर्शनीय है। इस घर में मन को बड़ी शांति मिलती है। भारत की आत्मा व संदेश के दर्शन महेश्वर स्थित अहिल्याबाई के घर में सहज ही होते हैं।[1]

अहिल्याबाई के स्वर्गवास के बाद उनके वंशजों ने अहिल्याबाई की स्मृति में सुंदर छत्रियां, दर्शनीय घाट, ऊंचे मंदिर आदि बनवा कर महेश्वर को और भी दर्शनीय व महत्वपूर्ण बना दिया है। देश-विदेश के कई लोग देवी अहिल्याबाई के निवास स्थान व उनकी इस कर्म-भूमि के दर्शन करने बड़ी संख्या में आते हैं। महेश्वर इंदौर से 90 किलोमीटर दूर खरगोन जिला (मध्य प्रदेश) में स्थित है।

1. इस घर का अधिकांश भाग गिर गया था पर अब इसका जीर्णोद्धार देवी अहिल्याबाई के वंशज श्री शिवाजीराव (श्री रिचर्ड) होलकर व खासगी ट्रस्ट इंदौर द्वारा कराया गया है।

12

बेटी मुक्ताबाई

अहिल्याबाई के शासनारूढ़ होने के समय जनता का जीवन कई प्रकार की कठिनाइयों व संकटों से भरा था। राज्य में सर्वत्र चोर-डाकुओं का बड़ा जोर था। राज्य के उत्तरी भाग में मोघियों व सोधियों ने बड़ा उधम मचा रखा था। दक्षिण भाग निमाड़ व खानदेश में भीलों का और महेश्वर के पास ही जाम घाट के पठार पर गणपतराव मराठा नामक डाकू का बड़ा आतंक था। राज्य में चोरी-डाके के समाचार रोज ही अहिल्याबाई के पास आते थे। यह दुख दूर करने का देवी ने भरसक प्रयत्न किया पर कोई लाभ नहीं हुआ। शासन को हाथ टेकते देख चोर डाकुओं का साहस और बढ़ गया। उनके डाके और कारनामे और बढ़ गए। यह देख अहिल्याबाई बहुत अधिक दुखी व चिंतित रहने लगीं। अंत में उन्होंने एक अचूक व सच्चे अर्थों में क्रांतिकारी कार्य द्वारा अपनी प्रिय प्रजा को इस गंभीर संकट से सदा के लिए मुक्त कर दिया।

अपनी राजधानी महेश्वर में उन्होंने एक दरबार का आयोजन कर उसमें राज्य के समस्त नागरिकों को आमंत्रित किया। गांव के प्रमुख व्यक्ति, समस्त सरदार, सैनिक अधिकारी, सैनिक आदि बड़ी संख्या में वहां आए। चोर लुटेरों के आतंक का वर्णन करते हुए अहिल्याबाई ने वहां दरबार में घोषणा की—जो वीर मेरे राज्य से चोर डाकुओं का संकट दूर कर देगा, उससे मैं अपनी एकमात्र कन्या, प्राणों से प्रिय मुक्ताबाई का विवाह कर दूंगी।

घोषणा सुनते ही दरबार में सन्नाटा छा गया। इतने में सबने देखा, एक तेजस्वी तरुण आगे आया और बोला—'मैं यह काम करूंगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस राज्य को चोर-डाकुओं के संकट से सदा के लिए मुक्त कर दूंगा। पर इसके लिए मुझे राज्य से सेना व धन का पूरा सहयोग मिलना चाहिए।'

अहिल्याबाई ने तत्काल सारी व्यवस्था कर दी। वह वीर सेना लेकर राज्य भर में एक तूफान-सा छा गया और उसने कठोरतापूर्वक सारे चोर-डाकुओं को ठिकाने लगा दिया। उसका नाम था यशवन्तराव फणसे। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर महेश्वर लौटते ही अहिल्याबाई ने बहुत प्रसन्न होकर अपने वचन के अनुसार शुभ मुहूर्त में बड़ी धूमधाम

से बेटी मुक्ताबाई का विवाह उसके साथ कर दिया। दहेज में बहुत सा-धन, कई आभूषण व तराना परगना दिया।

इस घटना से अहिल्याबाई की महानता के कई महत्वपूर्ण पहलू अच्छी तरह से सामने आ जाते हैं। प्रजा के हित व सुख को ही वे अपने जीवन में सर्वाधिक महत्व देती थीं। प्रजा की प्रसन्नता में वे सुख का अनुभव करती थीं व प्रजा पर आए संकट को स्वयं पर ही आया हुआ मानती थीं। प्रजा को संतानवत मानती थीं और उसे सुखी करने के लिए सब तरह का परिश्रम व त्याग करने के लिए सदा तैयार रहती थीं।

मुक्ताबाई एक राजकुमारी थी। गुण-शील, संपन्न, धार्मिक और सरल थी। महारानी अहिल्याबाई जैसी प्रभावी व वैभव संपन्न प्रतापी शासिका की इकलौती प्रिय बेटी थी। उनकी बड़ी ही लाड़ली थी। उसका विवाह किसी बड़े राजकुमार के साथ ही होता पर देवी ने प्रजा पर छाए संकट को दूर करने के लिए अपनी इकलौती व परम प्रिय बेटी को ही दांव पर लगा दिया था।

अहिल्याबाई वीर पूजक व गुण गाहक भी थीं। उनके द्वारा दरबार में राज्य के सर्वश्रेष्ठ वीर का चुनाव तो हुआ था। फिर उस सर्वश्रेष्ठ वीर का वीरोचित सम्मान भी उन्होंने कितनी अच्छी तरह से किया था। उन्होंने विवाह संबंधी समस्त सामाजिक रूढ़ियों व नियमों आदि की अवहेलना कर केवल गुणों के आधार पर ही श्रेष्ठ पात्र का चयन कर उसे अपनी पुत्री सौंप दी थी। सच्चे अर्थों में यह एक खरा क्रांतिकारी कार्य था।

कुछ वर्षों बाद मुक्ताबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। राज्य में आनंद छा गया। अहिल्याबाई को भी बड़ा सुख व संतोष मिला। बालक नथ्याबा को अहिल्याबाई अधिकतर अपने पास ही रखती थीं। वह उनका बड़ा लाडला था। बड़े स्नेह से वे उसका लालन-पोषण कर रही थीं। नथ्याबा को वे अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थीं पर विधाता को यह स्वीकार नहीं था।

नथ्याबा बहुत ही दुर्बल था। बीमार रहता था। अच्छी तरह से इलाज किया गया पर बीमारी बढ़ती ही गई। उसे क्षय हो गया। दूर दूर से नामी वैद्य बुलाए गए। जितना अच्छा इलाज तब संभव था, सब किया गया। अहिल्याबाई ने पूजा-पाठ, दान-पुण्य आदि सब किया। पर नथ्याबा की बीमारी बढ़ती ही गई और सन 1787 में छोटी उम्र में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी दोनों पत्नियां सती हो गईं।

इस एक मृत्यु ने पूरे परिवार को गहरे दुख में डुबो दिया।

अहिल्याबाई बहुत दुखी व अधीर हो गईं। अपने इकलौते व लाड़ले बेटे की अपने सामने हुई असामयिक मृत्यु के कारण माता-पिता पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। दोनों की स्थिति बड़ी चिंताजनक हो गई। विशेष कर पिता यशवन्तराव की मनस्थिति बहुत बिगड़ गई। पुत्र की याद में वे दिन-रात दुखी रहने लगे। दुख की अधिकता के कारण

वे बीमार पड़ गए। बहुत इलाज किया पर वे अच्छे नहीं हो सके। 3 दिसंबर 1791 को उनका स्वर्गवास हो गया।

बेचारी मुक्ताबाई ! वह विधवा हो गई ! सब पर फिर भारी दुख छा गया। अहिल्याबाई के आंसू रुक नहीं रहे थे। तभी मुक्ताबाई ने सती होने का अपना निर्णय बताया। यह सुनते ही अहिल्याबाई बहुत विचलित हो गई। उनके बुढ़ापे का आधार केवल वह बेटी मुक्ता ही थी। परिवार में और कोई बचा नहीं था। सब उन्हें छोड़कर चले गए थे। श्वसुर, पति, पुत्र, बहुएं, भाई, नाती पुत्र व नाती की पत्नियां और दामाद इन सबको मृत्यु ने उनसे छीन लिया था। एक बेटी बची थी सो वह भी सती होने जा रही थी।

अहिल्याबाई ने बेटी को बहुत समझाया कि वह सती न हो। उनका हृदय-द्रावक विलाप भी व्यर्थ रहा। मुक्ताबाई अपने संकल्प पर दृढ़ रही। उधर यशवन्तराव की अर्थी सजाई जा रही थी, इधर मुक्ताबाई श्रृंगार कर रही थी। यशवन्तराव की अंतिम यात्रा का दृश्य अत्यंत करुण था। संबंधीगण, राजकीय अधिकारी, ब्राह्मण समुदाय व हजारों व्यक्ति साथ थे। सबके हृदय रो रहे थे। अर्थी के पीछे मुक्ताबाई चल रही थी। कपाल कुंकू से भरा था। उसके नेत्रों में अपूर्व शांति व तेज था। हाथ जोड़े वे पति की अर्थी के पीछे चल रही थी। उनके पीछे उनकी दुखी मां अहिल्याबाई बड़ी कठिनाई से चल रही थीं। पीछे पीछे चल रहे थे सती माता के दर्शन करने दूर दूर से आए असंख्य लोग।

महेश्वर में नर्मदा तट पर चिता रची गई। यशवन्तराव का शव चिता पर रखा गया। पति के मस्तक को गोद में रखकर सती मुक्ताबाई भी चंदन की चिता पर बैठ गई। उस पर दैवी तेज छाया था। मंत्रोच्चार होने लगे। वाद्य बजने लगे। चिता प्रज्वलित की गई। सती माता का जय जयकार सबके हृदयों से निकल रहा था। शंख-घड़ियाल की ध्वनि ने वहां मंदिर जैसा वातावरण बना दिया था। चिता में अग्नि की ज्वालाएं ऊंची उठने लगीं। इसके साथ ही लोगों के हाथ सती माता के प्रति जुड़ गए। और मां अहिल्याबाई ! उन ज्वालाओं को वे देख नहीं सकीं। मूर्छित हो गई।

13

चन्द्रावतों के विद्रोह का दमन

वे दिन अशांति और युद्ध के थे। सर्वत्र अराजकता छाई थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। सतियों व वीरों की पवित्र भूमि राजस्थान में भोग-विलास, अनीति व हीन षड्यंत्रों का राज्य था। राजाओं व प्रजा का नैतिक पतन चरम सीमा तक पहुंच गया था। राजस्थान के हर राज्य में सत्ता व स्वार्थ के लिए गृहयुद्ध व एक-दूसरे पर आक्रमण चल रहे थे। राजस्थान में व्याप्त इन बुराइयों का मरहठों ने पूरा लाभ उठाया। मल्हारराव होलकर व पेशवा के अन्य सेनापतियों ने अपनी कूटनीति व सैनिक शक्ति द्वारा पूरे राजस्थान में अपना भारी प्रभाव जमा लिया। वहां कई राजाओं व जागीरदारों से मरहठे चौथ व अन्य कई कर वसूल करते थे। हंसते हंसते मर मिटने वाले राजपूतों द्वारा मरहठों का प्रायः सामना ही नहीं किया जाता था। उनके आक्रमणों को रोकने के लिए दूत पूना भेजे जाते थे या धन देकर पीछा छुड़ाने की नीति अपनाई जाती थी। राज्यों के आंतरिक मामलों में मरहठे एक प्रभावी शक्ति थे। उत्तर भारत में, विशेषकर राजस्थान में, सूबेदार मल्हारराव का बड़ा आतंक था। उसकी शक्ति, वीरता व नीति निपुणता के कारण वहां के प्रायः समस्त छोटे छोटे राजा वीरवर मल्हारराव का लोहा मानते थे।

जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्र, माधोसिंह व ईश्वरीसिंह, में सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया था। इस संघर्ष में जयपुर, जोधपुर व उदयपुर से लगाकर रामपुरा तक के राजपरिवार आपस में बुरी तरह से उलझ गए। मल्हारराव ने माधोसिंह का पक्ष लिया। कुछ युद्धों व रक्तपात के बाद मल्हारराव की शक्ति व कूटनीति के कारण दिसंबर सन 1750 में ईश्वरीसिंह ने विवश हो विषपान कर लिया। उसकी मृत्यु के बाद मल्हारराव ने माधोसिंह को जयपुर का शासक जनवरी सन 1751 में बनाया। इस सहायता के बदले माधोसिंह ने बहुत-सा धन व रामपुरा मल्हारराव को भेंट में दिया। रामपुरा तब उदयपुर के अधीन था और उस घराने से संबंधित चन्द्रावत राजपूत रामपुरा में राज्य कर रहे थे। माधोसिंह द्वारा मल्हारराव को रामपुरा का दिया जाना उदयपुर व रामपुरा के शासकों को बहुत अखरा पर मल्हारराव की शक्ति के सामने वे मन मसोस कर रह गए। चन्द्रावतों को मल्हारराव की अधीनता बहुत चुभती रही।

मल्हारराव के जीवित रहने तक चन्द्रावतों ने कोई गड़बड़ नहीं की । पर मल्हारराव की मृत्यु होते ही उन्होंने स्वतंत्र होने की हलचल शुरू की । फिर जब अहिल्याबाई ने राज्य की बागडोर संभाली तो उन्हें एक साधारण महिला समझकर ऐसे अच्छे अवसर का लाभ उठा लेना चाहा । उन्होंने रामपुरा व आसपास के राजपूतों को उत्तेजित कर उन्हें अपनी ओर कर लिया । उदयपुर के राणा ने चन्द्रावतों की सहायता के लिए अपनी सेना भेज दी । चन्द्रावतों के हौसले बहुत बढ़े हुए थे । उन्हें अपनी विजय का व स्वतंत्र होने का पूरा विश्वास था । मौका भी सचमुच अच्छा था क्योंकि होलकरों की अधिकांश सेना के साथ तुकोजीराव होलकर दूर उत्तर भारत में पेशवा की आज्ञा से सक्रिय थे ।

इधर अहिल्याबाई अकेली थी । बहुत थोड़ी सेना पास थी । पर वे जरा भी विचलित नहीं हुई । उन्होंने चन्द्रावतों को 31 गांव देकर उनसे समझौता कर लिया । थोड़े दिन वे शांत रहे पर सन 1771 में सेना सजाकर फिर आगे बढ़े । इस बार भी तुकोजीराव सेना सहित सुदूर उत्तर भारत में थे । चन्द्रावतों को यह भी पता था कि अहिल्याबाई के पास बहुत कम सेना है । पर हिम्मत न हारते हुए अहिल्याबाई ने युद्ध की सारी तैयारी की । अपने विश्वासी व वीर सैनिक शरीफ भाई के साथ अधिकांश सेना मोर्चे पर भेज दी । मन्दसौर के उत्तर में स्थित पलसूडा गांव के पास युद्ध हुआ । पहले तो चन्द्रावतों की सेना ने बड़ा जोरदार आक्रमण किया । होलकरों की सेना के पैर उखड़ने लगे पर अहिल्याबाई के प्रबल प्रयत्नों व कुशल युद्ध संचालन के कारण अंत में चन्द्रावतों की हार हुई । इस युद्ध का सारा श्रेय अहिल्याबाई को ही है क्योंकि युद्ध की संपूर्ण तैयारी व संचालन उन्होंने ही किया था ।

इसके बाद सन 1783 में चन्द्रावतों ने पुनः उपद्रव किया । अहिल्याबाई ने तुरंत सेना भेजकर उन्हें शांत कर दिया । इस विजय के बाद भी उन्होंने विद्रोही चन्द्रावतों के साथ अच्छा व्यवहार किया । पर उनकी इस उदारता व महानता को चन्द्रावतों ने गलत समझा । उन्होंने अपनी तैयारियां चालू रखीं । सन 1787 में राजपूतों ने सिंधिया की सेना को हरा दिया और निम्बाहेड़ा स्थित होलकरों की सेना को मार भगाया व जावद पर अधिकार कर लिया । होलकरों की इस हार से चन्द्रावतों को बड़ी प्रेरणा मिली । वे तुरंत सेना सहित राजपूतों से जा मिले । अब इन दोनों की सम्मिलित सेना होलकर राज्य पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ी ।

अहिल्याबाई ने युद्ध का सारा संचालन अपने हाथों में ले लिया । उन्होंने आवश्यक आदेश देकर अपने विश्वासपात्र सेना नायकों के साथ सेना को मोर्चे पर तुरंत भेजा । युद्ध से संबंधित सारे कार्य उनके सूक्ष्म निरीक्षण व अनुभवी मार्गदर्शन में होने लगे । सेना की भरती व शस्त्रों का निर्माण भी जोरों से उन्होंने चला रखा था । रोज जितने लोग सेना में भरती होते थे, उन्हें वे मोर्चे पर भेज देती थीं । दोनों सेनाओं में जमकर युद्ध हुआ । दोनों ओर के बहुत-से सैनिक मारे गए । अंत में राजपूत भाग खड़े हुए । अब

होलकरों की विजयी सेना रामपुरा की ओर बढ़ी और उसे जीत लिया। चन्द्रावत वहां से भाग कर आमद के किले में चले गए। वहां भी मोर्चा लगाया गया। देवी के पास ज्वाला नाम की एक प्रसिद्ध तोप थी। किले पर ज्वाला के गोले विनाश और मृत्यु बनकर बरसने लगे। शत्रुओं में निराशा छा गई।

दूसरे दिन चन्द्रावतों ने किले के बाहर बारूद बिछाना शुरू किया। आगे बढ़ती होलकर सेना को बारूद से उड़ा देने की उनकी योजना थी। पर दुर्भाग्य उनके साथ लगा था। बारूद बिछाते समय उसमें अचानक चिनगारी गिर गई और एक भीषण धमाके के साथ पचासों राजपूत सैनिकों के जले हुए अंग दूर दूर जा गिरे। चन्द्रावतों का प्रतापी सरदार सौभागसिंह भी बुरी तरह जल गया।

इसी समय देवी के आदेश से होलकर सेना ने जोरदार आक्रमण किया। राजपूतों में भगदड़ मच गई। सौभागसिंह पकड़ लिया गया। दूसरा सरदार भवानीसिंह भाग निकला। अहिल्याबाई की आज्ञा से सौभागसिंह को तोप के मुंह से बांध कर उड़ा दिया गया। सारे विद्रोही शरण में आ गए। इस प्रकार सारा विद्रोह अहिल्याबाई ने कठोरता से सदा के लिए दबा दिया। रामपुरा का पूरा प्रबंध कर अहिल्याबाई महेश्वर लौटीं। करीब 63 वर्ष की वयोवृद्ध अहिल्याबाई ने महेश्वर से रामपुरा तक की लंबी यात्रा कर यह प्रसिद्ध युद्ध जीता था।

इस विजय के समाचार पूना पहुंचे तो वहां आनंद की लहर दौड़ गई। नाना फड़नवीस ने विजयोत्सव मनाया। अहिल्याबाई के सम्मान में तोपें दागी गईं। पेशवा के दरबार में उनका यशोगान करते हुए नाना ने कहा—'अभी तक अहिल्याबाई के पूजा-पाठ व धर्म-कर्म की बात सुनते आ रहे थे, पर आज उनकी शूर-वीरता का भी पता लग गया। आज हम समझ गए कि पूना का पुण्य द्वार नर्मदा तट पर बसा महेश्वर है!'

नाना फड़नवीस अठाहरवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के प्रमुख राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ व प्रभावी व्यक्ति थे। मराठा साम्राज्य के निर्माण में उनका प्रमुख योगदान था। पेशवा की वास्तविक शक्ति नाना ही थे। ऐसा महान व्यक्ति अहिल्याबाई का बड़ा प्रशंसक व समर्थक था।

तीन बार रामपुरा के चन्द्रावतों ने विद्रोह किया था। तीनों बार सेनापति तुकोजीराव होलकर सेना सहित राज्य से दूर थे। तीनों बार अपनी सूझबूझ व वीरता से अहिल्याबाई ने शत्रु को मात दी। इससे उनकी कीर्ति दूर दूर तक फैल गई। उनकी नीतिज्ञता, कुशल नेतृत्व, युद्ध संचालन व असाधारण योग्यता का गुणगान सर्वत्र होने लगा।

14

महाप्रयाण

बेटी मुक्ताबाई के निधन से अहिल्याबाई के सारे दुख नए हो गए। अपनी प्राणप्रिय बेटी व बिछुड़े हुए समस्त आत्मीयजनों की याद कर वे बिलख बिलख कर रोने लगीं। उनका दुख किसी से देखा नहीं जाता था। सबने उन्हें सब तरह से बहुत समझाया। उन्हें शांति मिले, ऐसे प्रयत्न किए पर उनका दुख बढ़ता ही गया। उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। एक ही स्थान पर वे निश्चल-मौन-जीवित शव-सी पड़ी रहीं। खाना-पीना सब त्याग दिया। पूरे तीन दिनों तक वे इसी असीम दुख की स्थिति में रहीं। लेकिन सदा की भांति विवेक व कर्तव्यनिष्ठा ने उन्हें फिर जागृत किया। कर्तव्य के सामने उन्होंने अपनी भावनाओं व सारे दुखों को और एक बार तिलांजलि दे दी। शासकीय, धार्मिक व परोपकार के सारे कार्य बिना किसी शिथिलता के विधिवत चलने लगे।

अहिल्याबाई अब बहुत वृद्ध हो गई थीं। असह्य दुखों व कठोर साधना से भरे जीवन के कारण वे बहुत अशक्त भी हो गई थीं। शरीर आखिर कब तक साथ देता? वे अस्वस्थ रहने लगीं। शीत ज्वर व अतिसार का कष्ट होने लगा। वैध औषधि देते। उनकी मर्जी होती तो लेती थीं। स्वास्थ्य कभी सुधर जाता तो कुछ दिनों बाद फिर बिगड़ जाता। वृद्धावस्था के पहले ऐसी कोई बड़ी बीमारी उन्हें कभी नहीं हुई थी।

सन 1795, महीना अगस्त, तारीख 13, महेश्वर का उनका वही घर। वे कुछ दिनों से बीमार थीं। पर उस दिन अहिल्याबाई जैसे जान गईं कि उनका अंतिम समय अब दूर नहीं है। सावन का महीना था। उन्होंने बारह हजार ब्राह्मणों के भोजन का संकल्प छोड़ा। बहुत-सा दान-धर्म किया। अंतिम समय की कुछ धार्मिक विधियां पूर्ण कीं।

फिर सब तरफ से मन हटाकर अपना सारा ध्यान भगवान के चरणों में केंद्रित कर दिया, योगियों के समान। आंखें मूंद कर वे भगवान का स्मरण करने लगीं। थोड़ी भी घबराहट नहीं थी। कुछ क्षणों के बाद बड़ी ही शांति से उन्होंने प्राण त्याग दिए।

उसी समय उनकी एक प्रिय श्यामा गाय ने भी प्राण त्याग दिए। प्रतिदिन प्रातःकाल अहिल्याबाई इस गाय के दर्शन कर उसे प्रणाम करती थीं। अहिल्याबाई के स्वर्गवास का दुखद समाचार बिजली की गति से दूर दूर तक फैल गया। जिसने भी सुना, दुखी हो गया। छोटे से बड़े तक समस्त धर्म-संप्रदायों के लोग देवी-मां की याद में अधीर हो

गए। सब ऐसे दुखी थे जैसे उनकी सगी मां ही चल बसी हो। सबकी आंखों में उनकी मूर्ति थी और सबके मुंह पर उनकी कीर्ति।

देवी के अंतिम दर्शन करने अगणित लोग महेश्वर पहुंच गए। सब देवी की जय-जयकार कर रहे थे। देवी के मुखमंडल पर अपूर्व तेज व शांति थी। महेश्वर में नर्मदा के किनारे पर उनकी अंत्येष्टि की गई। बाद में वहां उनकी छत्री बनी।

15

परम धार्मिक जीवन

अहिल्याबाई पूर्ण रूप से एक धार्मिक महिला थीं। धर्म ही उनका सर्वस्व था। जीवन का प्रत्येक कार्य वे धर्म के आधार पर ही करती थीं। बचपन में माता-पिता का, मंदिर का व मंदिर के भगवान का उनके जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा था। यह प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा। धर्म के प्रति अविचल श्रद्धा उनके जीवन में सदा रही। एक गरीब परिवार में जन्म लेकर वे एक बड़े राज्य की महारानी बन गई थीं पर उनकी सरलता व धार्मिकता में कभी कोई कमी नहीं आई।

वे धर्म को उसके सच्चे अर्थों में मानती थीं। वे अच्छी तरह से जानती थीं कि समाज व व्यक्ति के लिए जिससे लौकिक उन्नति व पारलौकिक कल्याण यानी मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है। धर्म के धारण करने से ही मनुष्य को सच्चे सुख की प्राप्ति होती है तथा जीवन सार्थक होता है। इसके विपरीत धर्म की उपेक्षा से ही मनुष्य का पतन होता है, अनेक प्रकार की हीन प्रवृत्तियां उसमें घर कर लेती हैं और परिणामस्वरूप वह दुखी हो जाता है। सारी बुराइयां व दुख धर्मत्याग से ही होते हैं। वे यह भी जानती थीं कि जो धर्म का नाश करता है, धर्म उसका विनाश कर देता है, और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। वे नियमित रीति से धर्म-शास्त्रों का श्रवण-मनन करती थीं क्योंकि उन्हें मालूम था कि धर्म-शास्त्रों में ही धर्म के वास्तविक स्वरूप का वर्णन है। धर्म क्या है, धर्म का स्वरूप व आदेश क्या है, यह जानने का साधन धर्मशास्त्र ही है।

अहिल्याबाई ने धर्म को अपने जीवन में उतारा। हिंदू संस्कृति में धर्म, संस्कृति और जीवन इन तीनों का विस्तार व महत्व समान है। एक को हटाने से दूसरा नहीं रहता। धर्म और जीवन का मेल हिंदू संस्कृति के आग्रह का विषय है। अहिल्याबाई के जीवन का प्रत्येक क्षण व प्रत्येक कार्य पूर्ण धर्ममय व आध्यात्मिक था। धर्म और ईश्वर की श्रद्धामय व निष्ठामय भावना को ही आध्यात्मिकता कहते हैं। यह आध्यात्मिकता ही हिंदू संस्कृति की आधार-शिला है। इसके कारण ही जीवन सार्थक व सुखद बनता है। अहिल्याबाई का जीवन पूर्णरूप से आध्यात्मिक था। इसलिए उनका जीवन इतना महान,

सार्थक व अनुकरणीय बन सका।

वे सच्चे अर्थों में धार्मिक थीं इसलिए उनका जीवन इतना कर्ममय था। कर्म को हिंदू संस्कृति में बड़ा महत्व दिया गया है। कर्म को जीवन का आवश्यक लक्षण माना गया है। कर्म के बिना जीवन की स्थिति असंभव है, परंतु कर्म का धर्म के साथ मेल होना आवश्यक है। जिस कर्म में धर्म का भाव न हो, वह कर्म स्वार्थ में सना हुआ होगा और वह जीवन को सुखद नहीं बना सकेगा। ठीक विधि से किए गए धर्ममय कर्म को भारत में योग कहा गया है। इसी दृष्टि से देखा जाए तो मालूम होगा कि एक महान कर्मयोगी के समान ही अहिल्याबाई का जीवन था।

अहिल्याबाई के जीवन में जितने दुख व तूफान आए बहुत कम के जीवन में आए होंगे। उन्होंने असह्य दुख बड़े धैर्य व शांति के साथ सहन किए, क्योंकि भगवान पर उनकी अविचल श्रद्धा थी। उन पर जितने भी दुख व संकट आए, उन्हें प्रभु की इच्छा समझकर उन्होंने ग्रहण किया। इस भावना के कारण दुखों व संकटों ने उनका कर्तव्यपथ धूमिल नहीं किया। दुखों की तेज अग्नि में तप कर और भीषण कष्टों की ज्वालाओं में जलकर उनके जीवन का कुंदन अत्यंत तेजस्वी, अकलुष व पवित्र बन गया था। निष्काम साधना द्वारा बनी उनकी मूर्ति अत्यंत सुंदर, प्रेरणादायी, मूल्यवान व महान बन गई। वह दिव्य मूर्ति प्रात:स्मरणीया गंगाजल सी निर्मल, पुण्य-श्लोका अहिल्याबाई के रूप में अनादिकाल तक के लिए भारतीयों के हृदयों में आसीन रहेगी।

अहिल्याबाई शैव मत को मानती थीं। भगवान शिव की वे बड़ी भक्त थीं। महेश्वर में उनके घर में भी एक सुंदर शिव मंदिर था। महेश्वर में तथा देश में उन्होंने असंख्य शिव मंदिरों का जीर्णोद्धार व निर्माण कराया था। गौ, ब्राह्मण व तुलसी की वे बड़ी भक्त थीं। गायों को उनकी ओर से चारा पानी नित्य दिया जाता था। ब्राह्मणों को अगणित गौएं उन्होंने दान में दी थीं। विद्वानों व कर्मकांडी ब्राह्मणों को उनके पूजा कार्यों के अनुसार दान दक्षिणा दी जाती थी। ब्राह्मण-भोजन तो नित्य होता ही था। उनके घर के पास फूलों व तुलसी का बड़ा बाग था। अपने घर में व कई मंदिरों में उन्होंने तुलसी वृंदावन बनवाए थे।

पति की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने-आपको देश व देव को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया था। उनका मन सदैव भगवान के श्रीचरणों में ही लगा रहता था। राज-काज व जीवन के अन्य कार्यों को भी वे भगवत-पूजा का एक अंग ही मानती थीं। सारी संपत्ति श्री भगवान की है व सारा जग सियाराममय है, यह श्रद्धा रखकर उन्होंने अपना सर्वस्व, राज्य और जीवन भी जीवमात्र की भलाई के लिए शिवार्पण कर दिया था। शासन की बागडोर संभालते ही सबसे पहला कार्य उन्होंने यही किया कि राज्य को शिवार्पण कर विशाल खजाने पर तुलसी-दल रख दिया। उन्होंने घोषणा कर दी कि यह राज्य मेरा नहीं, भगवान शंकर का है, वे शंकर जो भभूत रमाकर, निर्लिप्त रह, सारे चराचर के कल्याण

में लगे रहते हैं। भगवान का यह काम भगवान शंकर की ही रीति-नीति से करना उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। इस महान लक्ष्य के अनुसार ही उन्होंने शासन किया और अपना जीवन बिताया। तुलसी-दल रखे खजाने का एक एक पैसा उन्होंने धर्म-कार्य में ही खर्च किया। एक पैसा भी अपने लिए नहीं लिया।

उनका राज्य भगवान श्री शंकर को समर्पित होने के कारण उनकी समस्त राजकीय आशाओं पर अपने हस्ताक्षर के बदले वे 'श्री शंकर' लिखती थीं। 'श्री शंकर आज्ञा से' ही सारा राजकाज चलता था। स्वयं को वे एक निमित्त मात्र ही मानती थीं। वे एक विशाल राज्य की समस्त अधिकार संपन्न शासिका होने पर भी मन से परम विरागी थीं। उनके पास सत्ता सुख था, अपार धन था व सुख के समस्त साधन भी सहज ही उपलब्ध थे। पर उन्हें इनमें कोई रस नहीं था। वे अत्यंत अनासक्त व निस्पृह थीं। सांसारिक सुखों में उलझने वाली महिला वे नहीं थीं। संसार के सारे प्रपंच उनके साथ थे, पर उनका जीवन जलकमलवत था और निर्लिप्त कर्तव्य-परायणता व निष्काम सेवा का आदर्श उदाहरण था। वे जो कुछ करती थीं, वह सब अपने लिए न कर, भगवान के लिए ही कर रही हैं, यह विश्वास बड़ी गहराई से उनके मन में जमा हुआ था। यही विश्वास उनकी अत्यंत मूल्यवान निधि थी। इस निधि ने उन्हें बड़ी शक्ति, साहस व योग्यता प्रदान की थी। इसी कारण वे इतने महान कार्य कर सकीं।

वे शैव थीं पर अन्य समस्त मतों व धर्मों के लिए उनके मन में पूर्ण आदर व श्रद्धा थी। उनके राज्य में सारे मतों व धर्मों को मानने में किसी भी तरह का कोई प्रतिबंध नहीं था। सबको अपने विश्वास के अनुसार आराधना करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। उन्होंने कभी भी किसी भी मत की निंदा या टीका नहीं की। जैसे उन्होंने शिव मंदिर बनवाए, वैसे ही उन्होंने श्रीराम, कृष्ण आदि के मंदिर भी तथा देश के समस्त तीर्थ-स्थानों पर मंदिर, घाट, धर्मशालाएं आदि बिना किसी भेदभाव के बनवाए।

मुसलमान शासकों ने भारत के असंख्य मंदिरों व मूर्तियों को नष्ट कर अनेक तीर्थ स्थानों को भ्रष्ट कर दिया था व हिंदुओं पर भीषण अत्याचार किए थे। पर अहिल्याबाई ने मुसलमानों को अपने राज्य में किसी भी तरह का दुख नहीं होने दिया। अन्य प्रजाजनों को प्राप्त समस्त अधिकार व सुविधाएं मुसलमानों को भी प्राप्त थीं। वे अपने मत के अनुसार चलने में पूर्ण स्वतंत्र थे। अहिल्याबाई ने कई मसजिदों व मजारों का निर्माण कराया था, उन्होंने मुसलमानों को सब तरह की सहायता दी थी। कई मुसलमान फकीरों व मौलवियों को उन्होंने भूमि, मकान आदि वंश परंपरा तक की सनदों सहित दान दिए थे। राज्य की मसजिदों व मजारों को भी वे आर्थिक सहायता देती थीं। उनकी महान उदारता की कीर्ति दूर दूर तक फैल गई थी। पास-दूर के कई मुसलमान देवी के राज्य में आकर बस गए। एक बार हैदराबाद निजाम के कुछ मुसलमानों ने देवी के राज्य में बसना चाहा। देवी ने समस्त सुविधाएं देकर उन्हें अपने राज्य में बसाया। कई बोहरा

परिवारों को भी उन्होंने महेश्वर व इंदौर में बसाकर सब तरह की सहायता दी थी । बोहरे व मुसलमानों को उनके राज्य में कभी कोई कष्ट नहीं हुआ । राज्य में मंदिरों में आरती व मसजिदों में अजानें साथ साथ गूंजती थीं । सब अपने विश्वास व श्रद्धा के अनुसार धर्म का पालन करते थे । उन्होंने देश-भर में जो धर्मशालाएं, सराएं, कुएं-बावड़ियों आदि का निर्माण कराया था, वे सब मानवमात्र के उपयोग के लिए समर्पित थे, किसी एक समुदाय विशेष के लिए नहीं ।

जीवन के सारे कार्य करते समय उनका चिंतन-मनन भी सदैव चलता रहता था । दीन-दुखियों का दुख दूर हो, भक्तजन शांति से भगवत-भजन करें व सारे मानव परम धार्मिक जीवन बिताकर अक्षय सुख का अनुभव करें, यही चिंतन वे सदैव करती रहती थीं । उनके इसी चिंतन के फलस्वरूप अगणित व्यक्तियों ने जीवन में सुख-शांति का अनुभव किया था ।

मनुष्य मात्र को स्थाई सुख-शांति का मार्ग स्पष्ट दिखाई दे, इसीलिए उन्होंने देश भर में ऊंचे ऊंचे मंदिरों का निर्माण कराया था । ये मंदिर वास्तव में धर्म की वे महान चौकियां हैं जो मनुष्य को अधर्म की ओर जाने से रोकती हैं और अनंत सुख का मार्ग बताती हैं । उनकी इसी भावना के कारण राजधानी महेश्वर को उन्होंने एक विशाल मंदिर के समान ही बना दिया था, जहां चौबीसों घंटे पूजा-पाठ, कीर्तन-हवन व धर्मशास्त्रों का पाठ आदि अखंड रूप से चलता रहता था । वे नित्य शिवलिंगार्चन का आयोजन भी करवाती थीं । नर्मदा की पवित्र मिट्टी से प्रतिदिन बड़ी संख्या में शिवलिंग ब्राह्मणों द्वारा बनाये जाते थे व विधिवत पार्थिव पूजन होकर उनका विसर्जन नर्मदा में कर दिया जाता था । बहुत बड़ी संख्या में ब्राह्मण इसे संपन्न करते थे । अब भी छोटे प्रमाण में यह आयोजन खासगी ट्रस्ट द्वारा महेश्वर में नित्य कराया जाता है ।

सच्चे अर्थों में परम धार्मिक होने के कारण उन्होंने अपने जीवन में कभी कोई अधर्म, अन्याय व अत्याचार नहीं किया । उनके जैसी धर्मपरायण, पर दुख-कातर व दोनों लोक सुधारने वाली महिलाएं इतिहास में कम ही हुई हैं । अहिल्याबाई का जीवन भारतीय नारीत्व का एक श्रेष्ठतम उदाहरण है । सर्व-कल्याणकारी हिंदू संस्कृति के पूर्ण दर्शन उनके जीवन में होते हैं ।

भारत ने सदैव आकाश की ओर ही देखा है, यह आरोप लगाने वालों को अहिल्याबाई का जीवन एक विनम्र और प्रभावशाली उत्तर है । अहिल्याबाई ने आकाश व पृथ्वी दोनों पर पूर्ण सफलता के साथ अपना अधिकार स्थापित किया था । इसका मूल कारण यही था कि उन्होंने स्वयं को देश व देव को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया ।

16

चरित्र और स्वभाव

राघोबा पेशवा की पत्नी आनन्दीबाई अपूर्व सुंदरी थी । उसे अपने रूप का बड़ा गर्व था । पर उसके लिए दुख की बात यह थी कि इतना रूप व ऐश्वर्य होते हुए भी उसका कहीं नाम नहीं हो रहा था । इसके विपरीत अहिल्याबाई की कीर्ति सारे देश में फैल रही थी । इस रहस्य का पता चलाने के लिए धार से आनन्दीबाई ने अपनी एक विश्वस्त दासी को अहिल्याबाई को देखने के लिए भेजा । दासी महेश्वर से लौटकर आई तो अत्यंत उत्सुक हो आनन्दीबाई ने पूछा – "क्या वह मुझसे भी अधिक सुंदर है ? वह कैसी है ? वह कपड़े व गहने कैसे पहनती है ?"

दासी बोली–"अहिल्याबाई न आप जैसी सुंदर हैं और न बहुत गोरी हैं । रंग भी सांवला है । देखने में साधारण हैं । कपड़े भी साधारण ही पहनती हैं । गहनों का नाम नहीं । पर उनके चेहरे पर एक दैवी तेज-सा छाया रहता है । जो भी उनके सामने जाता है उसका मन उनके प्रति आदर व श्रद्धा से भर जाता है ।"

अहिल्याबाई एक साधारण कुल में जन्मी थीं । देखने में वे सुंदर नहीं थीं । रंग भी सांवला ही था । पर उनका चेहरा उनके पवित्र, स्नेहभरे व निर्मल हृदय का प्रतिबिंब था । अत्यंत सौम्य दिखाई देने वाले चेहरे पर छाए सात्विक तेज के कारण वह साक्षात देवी के समान दिखाई देती थीं । अच्छे शील-स्वभाव व उच्च चरित्र के कारण उनके चेहरे में एक अभूतपूर्व सौंदर्य और आकर्षण था ।

उनके केश काले, घने व लंबे थे । ललाट बड़ा ही भव्य था । भौंहें लंबी और आंखें बड़ी बड़ी थीं । आंखों में वह अनुपम शांति, माधुर्य व तेज था जो सिद्धयोगियों में ही पाया जाता है । चेहरा गोल व भरा हुआ था । शरीर सुडौल व स्वस्थ था । कद मझौला था । व्रत, उपवास, कठोर परिश्रम, नियमित जीवन व सात्विक आहार के कारण उनका शरीर दुबला पर फुर्तीला था ।

उनका रहन-सहन व वेशभूषा सरल व आडंबरहीन थी । विधवा होने के बाद उन्होंने रंगीन कपड़े व आभूषण पहनना त्याग दिया था । सदैव सफेद साड़ी पहनती थीं । उन दिनों राजे-रजवाड़ों में परदे व अन्य आडंबरों की अधिकता ही थी । पर अहिल्याबाई

किसी भी बात पर अंधश्रद्धा से चलने वाली महिला नहीं थीं। उन्हें जो भी उचित व आवश्यक लगता, वही वे करती थीं। परदे से वह सदा दूर रहीं पर स्त्रियोचित मर्यादा, लज्जा और शील को उन्होंने कभी भी दूर नहीं किया।

प्यादे से वजीर बनने वालों को अधिकतर टेढ़े ही चलते सबने देखा होगा। अहिल्याबाई एक साधारण परिवार में जन्म लेकर एक समृद्ध राज्य की सर्वेसर्वा बन गई थीं। पर उनमें किसी तरह का गर्व, उथलापन या हीनता नहीं थी। वे आमों से लदी सघन अमराई के समान थीं। उनकी सुखद शीतल छाया में मनुष्य मात्र को असीम सुख-शांति प्राप्त होती थी। वे तुलसी के पौधे के समान थीं। पवित्रता, धार्मिकता व सरलता का प्रेरणादायी आभा-मंडल उनके आसपास छाया रहता था।

सबसे पहले वे सबकी मां थीं। छोटा हो या बड़ा, राजा हो या रंक, सबके लिए उनके हृदय के द्वार सदा खुले रहते थे। किसी भी प्रकार के भेदभाव से वह सर्वथा दूर थीं। समस्त मानवों व जीव मात्र को वे आत्मवत मानती थीं। सब पर समान स्नेह करती थीं। साधारण व्यक्तियों व नौकरों से भी उनका व्यवहार अत्यंत आत्मीयतापूर्ण रहता था। उनके समस्त नौकर उनकी भोजनशाला में ही सदा भोजन करते थे। नौकरों की सुख-सुविधा का वह सदैव पूरा ध्यान रखती थीं। उनके सुख-दुख में वह सदैव काम भी आती थीं। दुष्टों के लिए अवश्य एक कठोर शासिका थीं। परंतु शेष सबके लिए तो वे परम ममतामयी मां ही थीं।

सारे लोग यह अच्छी तरह से जानते थे कि देवी मां को अन्याय, पाप व बुरे कार्यों से घृणा है। प्रजा को अच्छे कार्यों में लगी देख उन्हें बड़ा सुख मिलता था। जब कोई अपने कर्तव्य-पालन में भूल करता या जान-बूझकर कोई अपराध करता तो सात्विक संताप व क्रोध से उनका चेहरा लाल हो जाता था। उस समय उनके सामने जाने का साहस किसी में नहीं होता था। अधर्म, अन्याय व किसी भी तरह के पापाचार को वे जरा भी सहन नहीं करती थीं। उनके सामने अनीति की बात तक करना असंभव था। शुद्ध विचार, सही बात व ठीक कार्य ही उन्हें पसंद थे। किसी भी प्रकार के छल, कपट, स्वार्थ, प्रपंच या षड्यंत्र का उनके जीवन में कोई स्थान था ही नहीं।

अपने से बड़े लोगों के प्रति वे बड़े आदर का भाव रखती थीं। महादजी सिंधिया को भी वे बहुत मानती थीं। एक बार महादजी किसी राजनैतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए महेश्वर आए। देवी ने उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। पूरे तीन महीने महादजी महेश्वर में रहे। आखिर एक दिन बड़ा साहस कर उन्होंने राजनैतिक उद्देश्य की बात कही। देवी ने साफ शब्दों में अपनी अस्वीकृति प्रकट कर दी। यह देख ताव में आकर महादजी बोले—"बाई साहब, यह समझ लो कि हम पुरुष हैं। हमने यदि मन में धार लिया तो आप पर क्या बीतेगी, यह भी जरा सोच लो!"

ये शब्द सुनते ही अहिल्याबाई ने अत्यंत क्रोधित हो गरज कर कहा—"जैसे तुम

अपने घर की स्त्रियों को सुपारी के टुकड़े के समान मुंह में डालकर गटक जाते हो, वही सलाह तुकोजी होलकर को देकर तुम दोनों फौज लेकर आओ । जिस दिन इंदौर पर तुम्हारी फौज कूच करेगी, उसी दिन हाथी के पांव की सांकल से तुम्हें बांधकर तुम्हारा स्वागत करूं, तभी मैं मल्हारजी होलकर की बहू कहलाऊं ! तुम्हारे मन में जो गुबार था, सो तुमने बाहर निकाल दिया । अब इस बात में जो चूको तो तुम्हें मार्तण्ड की सौगंध है !"

ये शब्द सुनते ही महादजी जैसा शक्तिशाली कूटनीतिज्ञ भी चौकड़ी भूल गया । अपने षड्यंत्र को पूरी तरह से चौपट होते देख खिसियाकर उसने तुरंत पूना की राह ली और फिर कभी भी देवी के साथ छल-कपट की बात नहीं की ।

अहिल्याबाई के सद्गुणों व निर्भीकता की कीर्ति माधवराव पेशवा तक पहुंची हुई थी । वे भी उनका बड़ा आदर करते थे और ऐसी कोई बात नहीं करते थे जिससे उनके स्वाभिमान को चोट पहुंचे । पेशवा ने उनकी इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम नहीं किया ।

कहावत है कि जहां गुड़ की भेली रखी होती है वहां चींटे इकट्ठे हो ही जाते हैं । धनवानों और राजा-महाराजाओं के आसपास स्वार्थी व चाटुकार लोगों का समुदाय प्राय: जम ही जाता है । अपनी वाहवाही व चिकनी-चुपड़ी बातों के दलदल से बहुत कम लोग स्वयं को बचा पाते हैं । अहिल्याबाई को ये सारी बातें जरा भी पसंद नहीं थीं । अपनी प्रशंसा सुनना उन्हें सुहाता ही नहीं था । स्वार्थी, मक्कार व चाटुकारों की दाल उनके सामने जरा भी गलने नहीं पाती थी । ऐसे लोगों को वे अपने पास फटकने भी नहीं देती थीं ।

एक दिन एक कवि महाराज उनके पास पहुंचे । उन्होंने अहिल्याबाई की आज्ञा लेकर अपनी पोथी सुनानी प्रारंभ की । उसमें अहिल्याबाई के गुणों और महिमा का काव्यमय वर्णन था । (कुछ क्षणों बाद ही अहिल्याबाई ने टोककर पूछा, "मेरे गुणगान के सिवा इस पोथी में और क्या है ?")

"माता, इसमें आदि से अंत तक आपकी महिमा का ही वर्णन है । आप कितनी महान हैं मां ।"—कवि बोला । (वह आगे पढ़ने जा रहा था कि देवी के शब्द उसके कानों में पड़े, "बस बंद करो । लाओ, रख दो यहां यह पोथी !"

कविराज ने पोथी वहां रख दी व हाथ जोड़कर खड़ा हो गया । गंभीर हो अहिल्याबाई बोली, "कविराज, मेरे बदले उस सर्वशक्तिमान भगवान के गुण-गौरव का वर्णन करते तो तुम्हारी लेखनी, परिश्रम व जीवन सार्थक हो जाता । जाओ, तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा और यह पोथी नर्मदाजी में बहा दी जाएगी ।"

वह पोथी उसी समय नर्मदाजी में बहा दी गई । बेचारा कवि देखता रह गया ।)

उनकी कर्तव्यपरायणता व कर्मठता अलौकिक थी । धर्म कार्य, परोपकार व

राज-काज में वे सदैव व्यस्त रहती थीं। अनावश्यक कार्यों व बातों में वे कभी भी समय नहीं खोती थीं। कार्य के सामने दिन-रात, ऋतु-कुऋतु, थकान-बीमारी आदि की वे जरा भी चिंता नहीं करती थीं। आलस्य क्या है, वे नहीं जानती थीं। काम-काज में किसी भी तरह की ढिलाई व गलती न तो वे खुद करतीं और न सहन करती थीं। नियमित जीवन व व्यवस्थित कार्य उनका स्वभाव बन गया था।

वे एक समृद्ध राज्य की महारानी थी। सारे सुख-भोग हाथ जोड़ उनके सामने खड़े रह सकते थे। पर उन्होंने सारे सुखों व विलासिता को सर्वथा दूर रखा। निष्काम सेवा व कठोर साधना को ही अपने जीवन में स्थान दिया। बड़ा ही सरल, सात्विक उनका जीवन था, और उसके अनुरूप ही सरल व पर दुख-कातर उनका स्वभाव था। वे किसी को दुखी देख नहीं सकती थीं। कोई भी दुखी व्यक्ति निराश होकर उनके पास से नहीं जाता था। बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के दुखियों का दुख दूर करने के लिए वे सदैव तत्पर रहती थीं।

प्रतिदिन सूर्योदय से एक घंटा पहले वे उठ जाती थीं। नर्मदा स्नान के बाद पूजन व स्वाध्याय कर पुराण व अन्य धार्मिक ग्रंथ सुनती थीं। अस्वस्थ रहने पर भी नर्मदा स्नान, पूजा-पाठ व अन्य कार्य नियमपूर्वक चलते थे। धर्मशास्त्रों का ज्ञाता, परम विद्वान वयोवृद्ध अम्बादास पुराणिक उन्हें रोज धर्म ग्रंथ पढ़कर सुनाता था। मल्हारभट पुराणिक व अन्य कथा वाचक भी थे। फिर दान-धर्म चलता। ब्राह्मणों, भिक्षुकों, असहायों व गरीबों को अन्न, वस्त्र, रुपया आदि वे नित्य दान करती थीं। इस समय आए समस्त व्यक्तियों को आदर सहित भोजन कराया जाता था। इसके मूल में देवी की भावना यह थी कि कहीं भी कोई जीव भूखा न रहने पाए। जब वहां कोई भूखा व्यक्ति नहीं रहता, तब ब्राह्मणों को अपने सामने भोजन कराने के बाद ही वे भोजन करने बैठती थीं। (उनका भोजन पूर्ण रूप से शाकाहारी व सात्विक रहता था। उनके समाज में मांसाहार चालू था, पर अहिल्याबाई ने जीवन में कभी भी मांसाहार नहीं किया। सांझ को भोजन न कर वे थोड़ा फलाहार करती थीं।)

महेश्वर में उनका राजकीय भंडारघर बहुत बड़ा था। योग्य कर्मचारी भंडारघर तथा भोजनशाला में नियुक्त थे। तीन सौ से अधिक व्यक्ति प्रतिदिन राजकीय भोजनशाला में भोजन करते थे। इनमें होलकर परिवार के सदस्य, निमंत्रित व्यक्ति, देवी की विशेष सेविकाएं, राजभवन के नौकर-चाकर आदि रहते थे। राज परिवार के लिए पाले जाने वाले गाय-भैंसों के रखवाले भी वहीं भोजन करते थे। इनके सिवाय पूजा-अर्चना करने वाले ब्राह्मणों की संख्या भी बहुत अधिक हो जाती थी।

भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम कर ठीक दो बजे वे दरबार में पहुंच, संध्या के छह-सात बजे तक राज-कार्य करती थीं। फिर दो घंटे ईश्वर की आराधना में बीतते थे। थोड़ा फलाहार कर, रात के नौ बजे वे फिर राज दरबार में जाती थीं और ग्यारह बजे तक

शासकीय कार्य करने के बाद सोती थीं।

उनका यह दैनिक कार्यक्रम नियमपूर्वक सदा चलता रहता था। जब कोई विशेष व्रत, उपवास या अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य होता, तभी उनके इस कार्यक्रम में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता था। कभी काम अधिक होता तो वह रात में देर तक कार्य करती रहती थीं। थकावट, आलस्य और आज का काम कल पर टालने की प्रवृत्ति उनमें जरा भी नहीं थी। उनके साथ काम करने वाले घबरा जाते थे। पर काम संतोषजनक रीति से या पूर्ण होने तक वह बराबर डटी रहती थीं।

बड़े सवेरे भगवान का नाम स्मरण कर वे अपने व्यस्त दिन का श्रीगणेश करती थीं और रात में देर तक किसी महान योगी की तरह साधनारत रहतीं। उनकी धारणा थी कि देह व जीवन काम करने व कर्तव्य पालन के लिए है, व्यर्थ गंवाने के लिए नहीं। उनकी इस कर्मठ प्रवृत्ति का परिचायक निम्नांकित एक पत्र है जिसे पूना सरकार के एक वकील ने, जो उनके दरबार में नियुक्त था, 6 फरवरी 1795 को यानी अहिल्याबाई की मृत्यु के लगभग छह महीने पहले लिखा था। पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है —

"...मातुश्री अहिल्याबाई सायंकाल का स्नान करके जप कर रही थीं। खबर पाकर उत्तर दिया कि भोजन के बाद पत्र सुनूंगी। वह दिन ग्रहण का दूसरा दिन था। दान करते वह थक गई थीं। दिन भर का उपवास था। रात्रि के भोजन के बाद उन्होंने कचहरी की। उसके समाप्त होने पर अकेली बिस्तर पर बैठ गईं। मंत्रियों में से राजेश्री विनायक बाजीराव और बालाजी कृष्ण को बुलाया। उनसे सब पत्र सुने।

"...उसी समय सवा प्रहर रात तक बैठक घाट और नाकों के भिन्न-भिन्न स्थानों के कमाविसदारों को पत्र लिखे और उन्हें तत्काल रवाना करवाया। जो आसपास ही रहते थे उन्हें सामने बुलाकर आदेश दिए व प्रबंध किया। उत्तर-दक्षिण के पहाड़ों के घाटों, नाकों, चौकियों, नर्मदा के दोनों तटों के नावघाटों और नेमावर तक के नदी पार करने के समस्त पैदल रास्तों का कुल प्रबंध किया। राजेश्री रघुनाथ पन्त को बुरहानपुर पत्र लिखा। वहां के कमाविसदार, जमींदार और भूमियों को पत्र लिखकर प्रबंध करने के आदेश दिए...।"

इस प्रकार अहिल्याबाई का सारा समय भगवान का नाम स्मरण, धर्माचरण, प्रजापालन व राज-कार्य में ही बीतता था। उनकी दिनचर्या घड़ी के समान चलती रहती थी। एक ओर भगवत पूजा, परोपकार व दूसरी ओर राज्य संचालन। इहलोक व परलोक दोनों को समृद्ध बनाने वाले कार्यों का सुंदर, सुखद व व्यवस्थित सम्मिलन।

17

साहित्य और कलाओं का संरक्षण

जीवन को सुंदर-सुखकर बनाने वाली समस्त कलाओं व विद्याओं का भारतीय संस्कृति से बहुत निकट का संबंध रहा है। कला, साहित्य, संगीत आदि में रस नहीं लेने वाले व्यक्ति को यहां भूमि का भार माना गया है। यह सत्य भी है। मानव यदि अपने जीवन को कलाओं व साहित्य के रंगों से मधुमय न बनाए तो उसका जीवन बहुत ही नीरस हो जाता है। मानव-समाज के स्वस्थ विकास, सुखमय जीवन व सर्वांगीण प्रगति के लिए कलाओं व साहित्य को सब तरह का आश्रय व प्रोत्साहन देने का कार्य भारत में विशेषकर राजाओं की ओर से किया जाता रहा है। यहां राजा का एक कर्तव्य ही माना गया है कि वह स्वयं रस-मर्मज्ञ हो तथा समस्त रसों व कलाओं को जीवन व प्रोत्साहन देनेवाला भी हो। अहिल्याबाई ने राजा के इस कर्तव्य का पालन पूर्ण रूप से किया। उन्होंने अपने राज्यकाल में कलाओं व कलाकारों को बहुत संरक्षण व प्रोत्साहन प्रदान किया।

अहिल्याबाई को पुस्तकी शिक्षा बहुत कम प्राप्त हुई थी। परंतु बचपन से ही ईश्वर में निष्ठा के कारण पूजन व धार्मिक ग्रंथों का नियमित पाठ उनके जीवन का प्रमुख अंग बन गया था। उनके पास श्रेष्ठ धार्मिक ग्रंथ ही रहते थे। इन ग्रंथों को श्रेष्ठ विद्वानों के द्वारा पढ़वाकर प्रतिदिन श्रवण करती थीं। अधिक पढ़ी-लिखी न होने पर भी उनका बौद्धिक विकास उच्च कोटि का था।

मराठी, संस्कृत, हिन्दी व मोड़ी वे लिख-पढ़ व समझ लेती थीं। उनके द्वारा विभिन्न अवसरों पर संबंधित व्यक्तियों को लिखे गए पत्र अपने ढंग के अनूठे हैं। वे पत्र साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उन पत्रों की भाषा व शैली, अर्थ व महत्व सब कुछ असाधारण हैं। उनकी गंभीरता, राजनीतिज्ञता व महानता के स्पष्ट दर्शन उन पत्रों में सहज ही होते हैं। उन्होंने तत्कालीन हिन्दी व मालवी भाषा में भी कुछ पत्र लिखे थे।

वेद-शास्त्र-संपन्न अनेक विद्वानों का यथोचित सम्मान कर उन्हें अहिल्याबाई ने पूर्ण राज्याश्रय प्रदान किया था। धर्मशास्त्र, कर्मकांड, वेदांत, साहित्य, व्याकरण, पूजन, कीर्तन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विद्याओं के माने हुए पंडितों को देश भर से निमंत्रित कर उन्हें महेश्वर में बसाया था। उन पंडितों की संपूर्ण व्यवस्था राज्य की ओर से थी।

अनेक विद्वानों को वंश परंपरा के लिए उन्होंने जागीरें भी प्रदान की थीं। कई लोग पुराण वाचन व धर्म ग्रंथों के लेखन के लिए नियुक्त थे। तब पुस्तकों की छपाई की व्यवस्था नहीं थी। अत: बड़ी संख्या में लोग धर्म ग्रंथों की नकल करने के लिए नियुक्त थे। उन्हें देवी द्वारा अच्छा पारिश्रमिक दिया जाता था। धर्म ग्रंथों की प्रतिलिपियां करने का तब एक व्यवसाय ही अच्छी तरह से चलता था। देवी द्वारा ये धर्म ग्रंथ समय समय पर दान किए जाते थे।

मराठी के सुप्रसिद्ध कवि मोरोपंत भी अहिल्याबाई की कीर्ति सुनकर महेश्वर आए थे। उनका बड़ा सम्मान किया गया। संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान व कवि खुशालीराम भी अहिल्याबाई के आश्रय में ही रहते थे। देवी प्रेरणा से 'अहल्या-कामधेनु' नाम के संस्कृत ग्रंथ की रचना उन्होंने की थी। सुप्रसिद्ध नायक अनन्तफन्दी भी अहिल्याबाई की कीर्ति सुनकर ठेट दक्षिण से महेश्वर आया था। फन्दी को भी उन्होंने यथोचित पुरस्कार देकर श्रेष्ठतम मार्ग दर्शन प्रदान किया था। इस प्रकार अनेक कवियों व लेखकों को उन्होंने आश्रय देकर साहित्य व साहित्यकारों की बड़ी सेवा की थी। समय समय पर वे विद्वानों, पुजारियों, लेखकों, कवियों, हरिकथा-गायकों व कीर्तनकारों को वस्त्र और पुरस्कार आदि भी देती थीं। उनके द्वारा विद्वानों की इस प्रतिष्ठा व संरक्षण के कारण महेश्वर नगरी देश भर के विद्वानों के लिए बड़े आकर्षण का स्थान बन गई थी। दूर दूर के विद्वान महेश्वर में खिंचे चले आते थे और देवी द्वारा यथोचित सम्मान व आश्रय पाते थे। जैसे राजा विक्रम के समय में अवंतिका व भोज के समय में धारा नगरी विद्वानों का केंद्र बन गई थी, वैसे ही अहिल्याबाई के समय में महेश्वर धार्मिकों व विद्वानों की नगरी बन गई थी।

काशी में उन्होंने ब्रह्मपुरी नाम का एक मोहल्ला बसाया था। वहां उन्होंने सरल जीवन व उच्च विचारों वाले धर्म-शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान ब्राह्मणों को देश भर से आमंत्रित कर बसाया था। राज्य की ओर से उन्हें समस्त सुविधाएं प्रदान की गई थीं ताकि समस्त चिंताओं से मुक्त होकर वे वेद-शास्त्रों के अध्ययन-मनन में सतत संलग्न रह सकें। वह ब्रह्मपुरी एक विशाल आश्रम के समान थी। इस आश्रम में अनेक श्रेष्ठ प्रतिभाओं व धार्मिक ग्रंथों का निर्माण हुआ था।

अहिल्याबाई ने देश के प्राय: समस्त तीर्थ-स्थानों में विशाल मंदिर, घाट व कई भवन बनवाए। कई मंदिरों का जीर्णोद्धार कर उनमें मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। अपने स्वर्गीय कुटुंबियों की छत्रियां भी बनवाईं। देश भर में असंख्य कुएं-बावड़ियां बनवाईं, कई सड़कें बनवाईं। कलकत्ता से काशी तक के सुप्रसिद्ध मार्ग को भी उन्होंने सुधरवाया। उनके जीवन में लोकोपकारी निर्माण-कार्यों का कार्य सतत चलता ही रहा। उन दिनों यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई थी कि अहिल्याबाई के राज्य में छेनी-हथौड़ा कभी बंद नहीं होता।

इन मंदिरों, घाटों व भवनों आदि का निर्माण राष्ट्र के पुनरुत्थान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। उत्तर भारत में अधिकांश मंदिर व मूर्तियां मुसलमान शासकों द्वारा नष्ट कर दी गई थीं। तीर्थ-स्थान भ्रष्ट कर दिए गए थे। यदि तब अहिल्याबाई भग्न मंदिरों का जीर्णोद्धार तथा टूटे मंदिरों के स्थान पर नए मंदिरों का निर्माण नहीं करातीं, तीर्थस्थानों को पुन: प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करातीं, संस्कृत व संस्कृति को आश्रय नहीं देतीं और भारतीय शिल्पियों व कला-कौशल को सब तरह का सहयोग न देतीं तो आज भारत का चित्र कुछ और ही होता। उन्होंने ये सारे कार्य कर वास्तव में भारत का पुन: निर्माण करने का महान कार्य संपन्न किया।

देश भर में सदैव चलने वाले निर्माण कार्यों के लिए अहिल्याबाई ने चुने हुए कुशल शिल्पियों व कारीगरों को इकट्ठा कर उन्हें राज्याश्रय प्रदान किया था। इन कारीगरों का एक विशाल केंद्र महेश्वर बन गया था। उन्होंने जयपुर से अनेक कुशल कारीगरों को बुलाकर उनके द्वारा अनेक सुंदर मूर्तियों का निर्माण कराया था।

निपुण कारीगरों, श्रेष्ठ मूर्तिकारों व अन्य कलाविदों को उनके वेतन के अतिरिक्त उनके द्वारा विभिन्न पुरस्कार, भेंट आदि दिए जाते थे व अनेक अवसरों पर विशेष सम्मान भी किया जाता था। उनके इन कार्यों से भारत की शिल्प-कला को नवजीवन प्राप्त हो गया था। अहिल्याबाई द्वारा निर्मित मंदिर, घाट आदि अत्यंत कलापूर्ण व दर्शनीय हैं। भारत की वास्तुकला के वे अनुपम उदाहरण हैं।

आज से पूरे दो सौ वर्ष पहले महेश्वर में वस्त्र उद्योग की स्थापना कर उसे सब तरह की सुविधाएं, प्रोत्साहन व सहयोग देकर अहिल्याबाई ने भारतीय उद्योग व कला-कौशल को अभूतपूर्व व परम क्रांतिकारी मार्गदर्शन प्रदान किया था। उस भीषण अराजकतापूर्ण युग में साहित्य व कला को आश्रय व नवजीवन प्रदान कर उन्होंने एक चमत्कारिक कार्य किया था।

18

शासन प्रबंध

अनुपम प्रजावत्सलता

अहिल्याबाई कहा करती थी—'ईश्वर ने मुझपर जो उत्तरदायित्व रखा है, उसे मुझे निभाना है। मेरा काम प्रजा को सुखी रखना है। मैं अपने प्रत्येक काम के लिए जिम्मेदार हूं। सामर्थ्य व सत्ता के बल पर मैं जो कुछ भी यहां कर रही हूं, उसका ईश्वर के यहां मुझे जवाब देना पड़ेगा।'

इन थोड़े-से शब्दों में देवी के महान जीवन का रहस्य सूत्र रूप में वर्णित है। उनकी इस श्रेष्ठ मनोभावना के कारण ही वे इतनी सफल व प्रजावत्सल शासिका बनकर सबके लिए परम वंदनीय बन गई थीं। वे अच्छी तरह से जानती थीं कि शासन-व्यवस्था का निर्माण प्रजा के हित व कल्याण के लिए ही है। शासन का प्रमुख कर्तव्य होता है—प्रजा का संरक्षण, उनके हितों व सुख-सुविधाओं का संवर्धन और उसकी नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति में सहयोग। शासन भोग न होकर एक महान योग, एक श्रेष्ठ साधना व गंभीर उत्तरदायित्वों से भरा अत्यंत महत्वपूर्ण कर्तव्य होता है। आदर्श शासन के इन मूलभूत तत्वों से वे सुपरिचित थीं। उन्होंने इन तत्वों को अपने जीवन में उतारकर प्रजा को सुखी करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। प्रजा के हित को ही वे अपना हित मानती थीं। प्रजा से अपनी संतान से भी अधिक स्नेह करती थीं।

उनकी प्रजा को बाहरी शत्रुओं, चोर, डाकुओं से या राज्य के अधिकारियों से कोई भय नहीं था। प्रजा अपने को पूर्ण सुरक्षित अनुभव करती थी। प्रजा को सुख-सुविधाएं सहज उपलब्ध थीं। उनके समय में अन्न, जल या जीवनोपयोगी किसी भी वस्तु की कभी भी कमी नहीं रही। उन्होंने कई स्थानों पर सदाव्रत व अन्न-छत्र चालू कर रखे थे, जहां साधु-संतों, गरीबों व असहायों को, बिना किसी भेदभाव के भोजन मिलता था। इसके सिवा दीन-दुखियों को वे नित्य बहुत दान-धर्म करती थीं। प्रजा के हित के लिए उन्होंने कई बड़े उपयोगी कार्य किए थे। उनकी इस नीति के कारण प्रजा बड़ी संपन्न व सुखी थी और सच्चे अर्थों में रामराज्य का अनुभव कर रही थी।

प्रजा की नैतिक व आध्यात्मिक उन्नति का भी उन्हें पूरा ध्यान था। इस हेतु उन्होंने

अपना जीवन अत्यंत पवित्र व उज्ज्वल रखा था । राजा के जीवन का प्रजा पर कितना प्रभाव होता है, यह वे अच्छी तरह से जानती थीं । इसलिए उन्होंने अपना जीवन व आचरण गंगाजल के समान शुद्ध व पवित्र रखा था । प्रजा को धर्म-मार्ग पर प्रेरित करने के लिए उन्होंने देश भर में ऊंचे ऊंचे मंदिर बनवाए और दान-धर्म को जीवन व शासन में सर्वाधिक महत्व प्रदान किया । अपने साधनामय जीवन के द्वारा वे प्रजा के जीवन को भी आनंद व प्रकाश से भरपूर कर देना चाहती थीं । उनकी मौन साधना का परिणाम अत्यंत शुभ हुआ था । 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार उनकी प्रजा भी धर्म के दिव्य मार्ग पर चलने में ही परम सुख मानती थी ।

उन्होंने प्रजा के अहितकर पूर्व-प्रचलित अनेक कानूनों, नियमों व करों को हटा दिया था । निस्संतान विधवाओं के धन को शासन द्वारा जब्त कर लेने के नियम को हटाकर, विधवाओं द्वारा दत्तक लेने व अपने धन का मनचाहा उपयोग करने की छूट उन्होंने दे दी थी । इस नियम का पालन करने में विधवाओं को वे पूर्ण सहयोग देती थीं । करों की संख्या व मात्रा भी उन्होंने कम कर दी थी । इससे राज्य की आमदनी कम हो गई थी पर प्रजा को बड़ा लाभ हुआ था ।

एक बार एक विधवा ने अहिल्याबाई के दरबार में अर्जी दी । लिखा था—'मेरे पास बहुत धन है । निस्संतान हूं । मेरे धन का उपयोग करने व वंश चलाने के लिए मुझे किसी को गोद लेने की आज्ञा देने की कृपा करें ।'

यह अर्जी अहिल्याबाई के पास पहुंची तब उनके पास कुछ अधिकारीगण भी बैठे थे । उन्होंने कहा—'इस स्त्री के लिए गोद लेने में आपत्ति नहीं है । यह बड़ी धनवान है । पर पहले इस बात का निबटारा कर लेना चाहिए कि राज्य को वह कितना धन नजर (भेंट) करेगी ।'

सब अधिकारियों की यही राय थी । उनकी बातें सुन लेने के बाद अहिल्याबाई बोली—'गोद लेने की आज्ञा देने की बात तो समझ में आ रही है, पर उससे नजर लेने की बात मेरी समझ में नहीं आ रही है । उससे नजर क्यों और किस बात की लेनी चाहिए? सारा धन कमाया उसके पति ने । वह निस्संतान मर गया । किसी को गोद लेने का अधिकार हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार उसकी पत्नी को है । पर हम राज-पाट करने वाले कहते हैं कि तुम किसी को गोद कैसे ले सकती हो? हमारा यह कार्य धर्मशास्त्रों के बिलकुल विरुद्ध है । अब हम यदि उससे धन लेकर आज्ञा देंगे तो वह धर्म-विरुद्ध कहलाएगा । यह उचित नहीं है, अत: उस स्त्री से एक पैसा भी न लिया जाए । हमारी ओर से इस अर्जी पर यही लिखा जाए कि तुम दत्तक ले रही हो, यह जानकर हमें बड़ा संतोष हुआ । तुम्हारे घराने की जो कीर्ति चली आ रही है उसे और अधिक बढ़ाओ, इसी में हमें और अधिक संतोष व सुख होगा । तुम्हारे धन की तुम ही मालिक हो । उसका पूरा उपभोग तुम ही करो । राज्य को तुम्हारे धन में से कुछ नहीं चाहिए ।'

एक बार निमाड़ की एक धनवान विधवा उनके पास पहुंची । उसके भी कोई संतान नहीं थी । एक स्वार्थी रिश्तेदार उसके धन को हड़पने का जाल फैला रहा था । विधवा ने मां के चरणों में प्रणाम कर कहा–"मैं सारा धन आपको अर्पित करने आई हूं ।"

उन्होंने निर्णय दिया–"वह सारा धन तुम्हारा है । उसे तुम अपने पास ही रखो । चाहो तो किसी को गोद ले लो । तुम अपने धन का मनचाहा उपयोग करो । परोपकार में यदि लगा सको तो बहुत अच्छा ।"

उस विधवा ने अपना सारा धन अनेक लोकोपयोगी कार्यों में लगा दिया । उसने कुछ मंदिर, घाट आदि बनवा दिए । इस प्रकार कई विधवाएं व अन्य व्यक्ति अपना धन अहिल्याबाई को अर्पित करने आते थे । उस धन को स्वयं न लेकर धार्मिक व सबके हितकारी कार्यों में लगा देने की प्रेरणा वे सबको देती थीं । परिणामस्वरूप प्रजा के द्वारा भी अनेक मंदिर, घाट, पुल, कुएं, धर्मशालाओं आदि का निर्माण बड़ी संख्या में होता रहता था ।

एक बार एक निस्संतान विधवा ने अहिल्याबाई की प्रेरणा से एक बालक को गोद लिया । अहिल्याबाई ने राज्य की ओर से दत्तक विधि की संपूर्ण व्यवस्था की । बड़ा भव्य समारोह हुआ । उन्होंने उस बालक को अपनी गोद में बैठा कर उसे बहुमूल्य पोशाक व अन्य उपहार सस्नेह दिए । उनके इस व्यवहार से उस मां-बेटे को जीवन-भर के लिए अक्षय आनंद व जीवन का अमूल्य आधार मिल गया ।

प्रजा से उनके संबंध अत्यंत सरल व स्नेहपूर्ण थे । किसी भी प्रकार का भेद-भाव, छल-कपट या स्वार्थ उनमें नहीं था । इसी कारण प्रजा भी उन पर असाधारण श्रद्धा-भक्ति रखती थी । उनके समय में प्रजा में किसी भी तरह का उपद्रव या अशांति नहीं हुई । आंतरिक शासन-व्यवस्था के लिए प्रजा पर किसी भी तरह की कठोरता या सेना का उपयोग करने की कभी भी आवश्यकता नहीं पड़ी । शक्ति और आतंक के द्वारा नहीं, बल्कि स्नेह भरी अनुपम उदारता के साथ उन्होंने शासन किया था ।

उनका दरबार प्रजा के लिए बिना किसी रोक-टोक के सदैव खुला रहता था । सबकी बात वे पूरे ध्यान से सुनकर तुरंत उचित व्यवस्था कर देती थीं । प्रजा के कष्टों को दूर करने में वे सदैव तत्पर रहती थीं । उनकी कर्तव्य-कठोरता व प्रजावत्सलता की अनेक घटनाएं हैं । वे घटनाएं उनकी महानता का बड़ा ही स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करती हैं, जैसे निम्नांकित यह घटना ।

उनके प्रधान सेनापति व राज्य प्रमुख स्तंभ सूबेदार तुकोजीराव होलकर का उद्दंड बेटा मल्हारराव अपनी उच्छृंखलता व लूटमार से प्रजा को बहुत कष्ट देने लगा । पहले तो अहिल्याबाई ने उसे बड़े स्नेह से समझाया । इतने पर भी उसने अपनी आदत नहीं छोड़ी तो उन्होंने सेना भेजकर मल्हार को पकड़ बुलाया और जेल में बंद कर दिया ।

तुकोजीराव होलकर

शासन-सूत्र संभालते ही अहिल्याबाई ने तुकोजीराव होलकर को अपना प्रमुख सहकारी व सेनापति बनाया । पेशवा सरकार ने भी उनकी इच्छानुसार तुकोजीराव को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया । यह व्यवस्था देवी ने जीवन-भर स्थाई रखी । तुकोजीराव जैसे सुयोग्य शासक, पराक्रमी सेनापति व विश्वासपात्र सहकारी के कारण उन्हें शासन संबंधी समस्त कार्यों में बड़ा लाभ हुआ था ।

तुकोजीराव राज-परिवार के ही सदस्य थे । सूबेदार मल्हारराव के सहयोगी के रूप में वे सफलतापूर्वक कार्य कर चुके थे । पेशवा का, मल्हारराव का व अहिल्याबाई का उन पर पूरा विश्वास था। तुकोजीराव ने इस विश्वास को जीवन भर निभाया। अहिल्याबाई के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी । वे उनसे आयु में कुछ बड़े थे, फिर भी वे उन्हें माता के समान पूज्य मानते थे । उनके चरणों में मस्तक रखकर ही वे सदैव प्रणाम करते थे । वे बड़े विनम्र, आज्ञाकारी व राज्य-भक्त थे । अहिल्याबाई की आज्ञाओं का उन्होंने सदैव अक्षरश: पालन किया । कुछ स्वार्थी व प्रपंची लोगों ने इन दोनों में विरोध पैदा कराने के बहुत प्रयत्न किए, पर दोनों के स्नेह, चतुराई व मन के बड़प्पन के कारण उनकी दाल गलने नहीं पाई ।

एक बार मतभेद पैदा करने वालों को तुकोजीराव ने इन शब्दों में साफ टरका दिया था—'बाई साहब के चरणों से नमकहरामी मुझसे कभी न होगी । यदि कभी मेरे किसी दोष के कारण उनके मन में मेरे प्रति दुर्भाव भी उत्पन्न हुआ, तो मैं हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो जाऊंगा । फिर वे चाहे तो मेरे प्राण लें, या जेल में डाल दें । मुझे यह सब कबूल है । लेकिन जब तक मेरी जान में जान है, तब तक तो नमकहरामी मुझसे नहीं होगी ।'

अपने इन शब्दों पर तुकोजी जीवन-भर डटे रहे । वे वीर थे, कुशल सेनापति थे, मालवा के सूबेदार थे, पर उन्होंने अपना अधिकार अहिल्याबाई पर कभी नहीं जताया । एक बार एक नि:संतान विधवा का धन उन्होंने छीन लिया । अहिल्याबाई को पता चलते ही उन्होंने तुकोजी को तुरंत उस विधवा का सारा धन लौटाने व उस गांव से चले जाने का आदेश दिया । तुकोजी ने उनकी आज्ञा का तुरंत अक्षरश: पालन किया ।

इसी प्रकार एक बार तुकोजी ने राज्य के एक कर्मचारी को पेशवा के यहां नौकरी करने की आज्ञा दे दी । इसे साधारण बात समझकर उन्होंने अहिल्याबाई की न तो आज्ञा ली और न उन्हें कोई सूचना ही दी । अनुशासन भंग होने की यह बात सुनते ही देवी ने तुरंत उन्हें बुलाया । तुकोजी को अपनी भूल मालूम हो गई । उनके चरणों में गिरकर उन्होंने अपराध की क्षमा मांगी । इतना ही नहीं शपथ लेकर कहा कि भविष्य में उनकी आज्ञा से ही सारे कार्य होंगे ।

अहिल्याबाई का अपने इस सुयोग्य, वीर व कर्तव्यपरायण सेनापति पर पूर्ण विश्वास था। दोनों का एक-दूसरे के प्रति अनन्य स्नेह था। कभी कभी सेना व धन को लेकर दोनों में थोड़ी खट-पट हो जाती थी। पर वह क्षणिक रहती थी। एक ओर वात्सल्यपूर्ण चिंता थी तो दूसरी ओर अविचल श्रद्धा-भक्ति थी। उनमें शासक व कर्मचारी का नहीं बल्कि माता और पुत्र का परम स्नेह भरा संबंध था। शासन संबंधी समस्त महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने तुकोजी को सौंप रखे थे। तुकोजी से राय लिए बिना कोई भी महत्वपूर्ण कार्य वे नहीं करती थीं। राज्य का उत्तरी भाग उनकी देख-रेख में था और सतपुड़ा के दक्षिण का तुकोजी के। तुकोजी जब राज्य से दूर रहते, तब दोनों भागों का सारा काम वे ही संभालती थीं। दोनों भागों के कोष व कर संबंधी सारी बातें अहिल्याबाई ही देखती थीं। मल्हारराव के समय से लेकर अहिल्याबाई के जीवनकाल तक का उनका अधिकांश जीवन रणक्षेत्र में व राजनीतिक उलझनों में ही बीता था।

सरदार और कर्मचारी

सूबेदार मल्हारराव ने दक्षिण से अपने साथ आए शूर सहयोगियों को अपने अधीन राज्य में जागीरें प्रदान की थीं। अहिल्याबाई ने भी इस पद्धति को चालू रखा। उन्होंने जागीरदारों को पूर्ण प्रतिष्ठा व महत्व प्रदान किया। जागीरदार राज्य-व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग बन गए थे। अपनी जागीरों का भीतरी प्रबंध करने में बहुत अंशों तक वे स्वतंत्र थे। इन सरदारों को निश्चित संख्या में पैदल व घुड़सवार सेना सदैव तैयार रखनी पड़ती थी। समय पड़ने पर राज्य की सेवा के लिए वे सदैव तैयार रहते थे। राजकीय आदेशों का उन्हें पूर्ण पालन करना पड़ता था। इनके समस्त कार्यों पर अहिल्याबाई की सदैव कड़ी नजर रहती थी। प्रजा का थोड़ा भी अहित होने पर बड़े-से-बड़े सरदार को तुरंत राह पर लाने में वह देर नहीं करती थीं।

एक बार महिदपुर के सरदार ने प्रजा से अन्यायपूर्ण कर वसूल कर लिया। कुछ लोग मां के पास दौड़े आए। उन्होंने तुरंत सरदार को बुलवाया। दोनों पक्षों की बातें एक-दूसरे के सामने सुनीं। सरदार दोषी सिद्ध हुआ। अहिल्याबाई ने प्रजा के सारे रुपए वापस दिलवाए और सरदार को नियमों के अनुसार चलने की चेतावनी देकर भविष्य के लिए सावधान कर दिया। सरदार साहब की चाल सदा के लिए सुधर गई और प्रजा अपनी मां की जय-जयकार करती हुई गई।

अहिल्याबाई के सामने प्रजा का हित ही सर्वोपरि महत्व का था। प्रजा के हित के सामने बड़े से बड़े सरदारों व अधिकारियों को भी वे तुच्छ समझती थीं। अन्यायी व नियम विरुद्ध चलने वाले कर्मचारियों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने में वह किसी तरह का संकोच नहीं करती थीं। परिणाम यह हुआ कि अधिकारीगण प्रजा के साथ अन्याय करने में डरते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनके द्वारा किया गया गलत

कार्य अहिल्याबाई से छिप नहीं सकेगा और उसका परिणाम भुगतने से उन्हें कोई बचा नहीं सकेगा ।

चांदवड़ के मामलतदार ने एक व्यक्ति को सताया । पता चलते ही अहिल्याबाई ने उसे लिखा—"भविष्य में प्रजा के साथ इस प्रकार का व्यवहार होना ठीक नहीं । प्रजा की हर बात पर गौर कर पूर्ण संतोष प्रदान करो । भविष्य में तुम्हारी शिकायत हुई तो उसका परिणाम अच्छा न होगा ।"

इसी प्रकार एक अन्य अधिकारी को उन्होंने लिखा—"चिरंजीव तुलाराव होलकर को अहिल्याबाई का आशीर्वाद । तुमने शेगांव परगने में प्रजा पर मनमाना जुल्म कर उनसे पैसा वसूल किया है । तुमने प्रजा के मामलों के लिए महाल के अधिकारी को क्यों तंग किया ? अतएव तुम्हें लिखा जाता है कि आज तक प्रजा पर अन्याय कर अपनी मनमानी से जो रुपया तुमने वसूल किया है, उसका खुलासा सरकार में पेश करो और यदि भविष्य में तुमने लेन-देन के मामले में किसी भी तरह का अन्याय किया तो तुम्हारा वह कार्य अक्षम्य समझा जायेगा ।"

सिरोंज में खेमदास नामक धनी साहूकार निःसंतान मर गया । वहां के अधिकारी ने उनकी विधवा को धमकाकर पत्र लिखा कि तुम्हारी सारी संपत्ति सरकार द्वारा जब्त कर ली जाएगी । विधवा ने दत्तक लेने की प्रार्थना की । अधिकारी ने कहा—"यदि तीन लाख रुपए चुपचाप मुझे दे दो तो सारी संपत्ति तुम्हारे नाम कर दूंगा ।"

बेचारी विधवा ने तीन लाख रुपए दे दिए । फिर किसी के कहने से वह अहिल्याबाई के पास पहुंची और सारी कथा सुनाई । अहिल्याबाई को बड़ा क्रोध आया । उन्होंने उस अधिकारी को बुलवाया । दोषी पाकर उसे उसी समय नौकरी से निकालकर कठोर दंड दिया । उस विधवा का सारा धन लौटाकर उसे दत्तक लेने की आज्ञा दी ।

मनुष्यों की उन्हें बड़ी अच्छी परख थी । चुन चुनकर योग्य व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुसार पदों पर नियुक्त किया गया था । व्यक्तियों को उनकी योग्यता के अनुसार काम देकर उनसे वह काम करवा लेने में वे बहुत निपुण थीं । उन्होंने जिन व्यक्तियों को नियुक्त किया था, उन सबने जीवन-भर बड़ी योग्यता व प्रामाणिकता से कार्य किया था, गलत काम करने वाले कर्मचारियों को वे जरा भी सहन नहीं करती थीं ।

कर्मचारियों और उनके परिवार की सुख-सुविधाओं का वे सदैव पूरा ध्यान रखती थीं । कर्मचारियों का वेतन नियमपूर्वक प्रतिमाह चुका देने के उनके आदेश थे । स्थान व व्यक्ति-विशेष के अनुसार वेतन कम-अधिक होता था । प्रत्येक कर्मचारी का कार्य पूर्व-निश्चित रहता था । नियुक्ति के समय उसे उसके वेतन व कार्य की पूर्ण जानकारी करा दी जाती थी । सबसे प्रमुख बात यह थी कि कर्मचारियों के साथ उनका व्यवहार मानवीय व अत्यंत स्नेहपूर्ण होता था । एक बार उन्हें पता चला कि राज्य में दूर स्थित एक कर्मचारी की कन्या अस्वस्थ रहती है । उन्होंने तुरंत बीमारी की पूर्ण जानकारी प्राप्त

कर सांडनी सवार द्वारा दवाइयां भिजवा दीं और लिखा कि बेटी का स्वास्थ्य अच्छा करने के लिए जो भी आवश्यक हो, वह तुरंत लिख भेजे ।

एक बार नागलवाड़ी के कमाविसदार ने उनको लिखे पत्र में शासन संबंधी बातें लिखकर अंत में लिखा—"इन दिनों मेरे पेट में बड़ा दर्द रहता है ।" देवी मां ने तुरंत आवश्यक उपचार की व्यवस्था कर दी । इस प्रकार प्रजा व कर्मचारियों की ओर से उनको लिखे पत्रों में शासकीय बातों के सिवा उनके घर-गृहस्थी व व्यक्तिगत जीवन की बातें निःसंकोच लिख दी जाती थीं । एक बार एक कर्मचारी ने लिखा—"मेरी मां बहुत बीमार है, घर की बड़ी दुर्दशा है ।" पत्र पढ़कर वे स्वयं उस कर्मचारी के घर गईं व उसे सांत्वना दी । कर्मचारी को आवश्यक सुविधाएं भी तुरंत प्रदान कर दीं । अहिल्याबाई का नियम था कि अपने बीमार प्रजाजनों व कर्मचारियों के समाचार लेने वह स्वयं उनके घर जाती थीं ।

इसी आत्मीयतापूर्ण व्यवहार के कारण कर्मचारीगण उनके प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखते थे और उन पर सौंपा गया कार्य वे बड़ी प्रामाणिकता, उत्साह व योग्यता से करते थे । अच्छा काम करने वाले कर्मचारियों को समय समय पर उनके द्वारा राजकीय वस्त्र, आभूषण, पुरस्कार आदि देकर सम्मानित किया जाता था । अनेक स्वामिभक्त कर्मचारियों को उन्होंने जागीरें आदि भी प्रदान की थीं । कर्मचारियों की वृद्धावस्था में उनका उचित प्रबंध राज्य की ओर से किया जाता था ।

अहिल्याबाई को अपने राज्य की, राज्य में प्रचलित कानूनों व नियमों की, अधिकारियों की व उन पर सौंपे गए कार्यों की पूर्ण जानकारी थी । उनकी स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी थी । एक बार सुनी हुई बात सदैव याद रहती थी । प्रत्येक कर्मचारी के कार्य व जीवन पर उनका पूरा ध्यान रहता था । नियम-विरुद्ध व प्रजा के लिए अहितकर कोई भी कार्य उन्होंने कभी भी सहन नहीं किया । वे कभी भी अधिकारी के हाथ का खिलौना नहीं बनीं । अपने विवेक व बुद्धि से प्रजा का हित सामने रखकर उन्होंने शासन चलाया ।

उन्होंने सारे अधिकारियों को अपने कठोर नियंत्रण में रखा था । बिना पूर्व सूचना के वे अधिकारियों के कार्यों का बड़ा बारीकी से निरीक्षण करती थीं । गलती या जान-बूझकर अपराध करने वाले अधिकारी दंड से बच नहीं पाते थे । अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना अधिकारियों के लिए उन्होंने असंभव कर दिया था । एक श्रेष्ठ शासक के सारे गुण उनमें थे । इन कारणों से अधिकारीगण सदैव सावधान रहकर कार्य करते थे । वे उनके प्रति अपार श्रद्धा तो रखते थे पर साथ ही उनसे डरते भी बहुत थे । कामचोर, रिश्वतखोर व प्रजा को सताने वाले कर्मचारी दंड पाए बिना छूटते नहीं थे । उन्होंने कर्मचारियों को स्पष्ट चेतावनी दे रखी थी कि वे तथा सारी राज्य-व्यवस्था प्रजा को सुखी व समृद्ध बनाने के लिए है, न कि प्रजा को दुखी करने या उनका किसी तरह

से शोषण करने के लिए।

इस प्रकार अहिल्याबाई के समान एक आदर्श व श्रेष्ठ शासक और उनके आधीन योग्य व चरित्रवान कर्मचारियों के कारण शासन-तंत्र बहुत ही अच्छा व प्रजा-हितकारी था। सुशासन के परिणामस्वरूप प्रजा बहुत सुखी थी और प्रजा ही नहीं राज्य के कर्मचारीगण भी अत्यंत सुखी थे। इन सबको सुखी देख देवी को बड़ा सुख मिलता था।

चोर-डाकुओं से मुक्ति

उन दिनों देश का जन-जीवन अत्यंत असुरक्षित था। सेनाओं की सतत भाग-दौड़ के कारण बेचारी जनता को बड़ी हानि उठानी पड़ती थी। कभी कभी तो कई गांव व खड़ी फसलें सेना द्वारा लूट ली जाती थीं। कोई सुनने वाला नहीं था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावत सर्वत्र चरितार्थ हो रही थी। लोगों को दिन-दहाड़े लूट लिया जाता था। मार्ग खतरों से खाली नहीं थे। चोर-डाकुओं से बचकर निकल जाने वाला भाग्यवान माना जाता था। लुटेरों व बटमारों के कई छोटे-बड़े दल दूर दूर छाए हुए थे।

होलकर राज्य में विशेषकर निमाड़ में भीलों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। चोरी-डाके डालना व यात्रियों को लूटना इनके लिए खेल हो गया था। छोटे छोटे सामंत सरदारों ने इन भीलों को आश्रय व सहयोग दे रखा था। बदले में वे लूट का कुछ भाग पा जाते थे। भीलों की शक्ति व आतंक के मारे जनता बहुत दुखी थी। भीलों ने यात्रियों पर "भील कौड़ी" नाम का एक कर भी लगा दिया था। यात्री व व्यापारी जो सामान से लदी गाड़ियां, घोड़े, बैल आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे, उनसे यह कर वसूल किया जाता था।

जंगल के राजाओं द्वारा लगाए गए इस नए कर की बात अहिल्याबाई तक पहुंचते ही उन्होंने समस्त भीलों के मुखिया को बुलाकर यात्रियों को न सताने के बारे में समझाया। इस स्नेहपूर्ण व्यवहार का भीलों ने गलत अर्थ लगाया। देवी को उन्होंने निर्बल समझकर अपना काम चालू रखा। यह देख देवी को बड़ा क्रोध आया। अब उन्होंने दुष्टों की समझ में आ जाने वाली भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने सेना भेजकर भीलों के मुखिया को व उनके प्रमुख साथियों को पकड़ बुलाया। फिर अच्छी पिटाई करवाकर उन्हें जेल में बंद कर दिया। कई भीलों को कठोर दंड दिया। अहिल्याबाई के क्रोध व कठोरता के कारण भीलों की बुद्धि ठिकाने आ गई। अहिल्याबाई के चरणों में लोटकर उन्होंने क्षमा मांगकर सारी बातें मान लीं। उन्होंने सबको मुक्त कर उनसे बड़ा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार किया। उन्हें खेती-बाड़ी व काम-धंधे की भरपूर सुविधाएं भी प्रदान कर दीं ताकि वे सुख से जीवन व्यतीत कर सकें।

अहिल्याबाई ने एक अनूठी व्यवस्था और की। उन भीलों पर ही यात्रियों की सुरक्षा

का उत्तरदायित्व सौंप दिया । इस व्यवस्था के अनुसार मार्ग में जहां भी कोई यात्री लूटा जाता तो उसकी सारी क्षति-पूर्ति घटना-स्थल के पास रहने वाले भीलों को करनी पड़ती थी । इसका परिणाम यह हुआ कि किसी समय लूट-मार करने वाले भील यात्रियों के संरक्षक बन गए थे । इससे राज्य में लूट-मार बंद हो गई व मार्गों में भी जान-माल का भय नहीं रहा । लोग बिना किसी भय के सर्वत्र आने-जाने लगे ।

फिर एक बार विंध्याचल के आस-पास रहने वाले भीलों ने विद्रोह कर दिया । अहिल्याबाई ने तुरंत एक उच्च अधिकारी को अपना पत्र देकर उनके पास भेजा । पत्र का आशय यही था—'मैंने प्रजा को बिना किसी भेद-भाव के सुखी रखने के यथाशक्ति प्रयत्न किए हैं । तुम्हारे इस विद्रोह के क्या कारण हैं ? आकर मुझे बताओ । तुम्हारे कष्टों को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करूंगी ।'

वे यदि चाहतीं तो सेना भेजकर विद्रोहियों को सरलता से ठिकाने लगा सकती थीं । पर उन्होंने ऐसा नहीं किया । भीलों को आदर-सहित बुलाकर उनके साथ पुत्रवत व्यवहार किया । उनकी सारी बातें सुनकर उनके कष्टों को दूर कर दिया । उन्हें समस्त आवश्यक सुविधाएं उसी समय प्रदान कर दीं । वे विद्रोही भील उनके सदा के लिए भक्त बन गए ।

इस प्रकार राज्य की एक प्रमुख समस्या, प्रेम और शक्ति का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर, उन्होंने सुलझा ली । प्रजाजन और व्यापारी राज्य में सर्वत्र सरलता से निर्भय हो आने-जाने लगे । इससे प्रजा की सुख-सुविधाएं बढ़ीं व व्यापार की भी बड़ी प्रगति हुई ।

न्याय व्यवस्था

अहिल्याबाई का एक आदेश इस प्रकार था—'स्वर्गवासी सूबेदार (मल्हारराव होलकर) ने महादजी थिटे केन्दुरकर से कुछ रुपया घोड़े खरीदने के लिए कर्ज लिया था । महादजी थिटे का भी स्वर्गवास हो गया है । उनके नाती राणोजी थिटे उक्त कर्ज के दस्तावेजों को लेकर महेश्वर आए हैं । राणोजी को उक्त कर्ज का चुकता रुपया राज्य से तुरंत चुका दिया जाए ।'

इसी प्रकार दिनांक 1-9-1792 में देवी ने भारमल दादा को लिखा—'परगना थालनेर मौजा बाघाड़ी के जाखोजी जगताप पर आरोप लगाकर उससे चार सौ रुपए वसूल कर तुमने खजाने में जमा किए । जांच करने पर जगताप निरपराध पाया गया । अत: उसे चार सौ रुपए तुरंत लौटाए जाएं ।'

एक बार एक अधिकारी ने किसी लावारिस मृत व्यक्ति के बारह सौ रुपए सरकारी खजाने में जमा करा दिए । थोड़े दिन बाद मृत व्यक्ति के एक भाई ने अहिल्याबाई के सामने दावा प्रस्तुत किया । देवी उसके प्रमाणों से संतुष्ट हो गईं व उस वारिस को खजाने

में से जमा रुपया लौटा दिया गया।

ये घटनाएं अहिल्याबाई की न्याय-प्रियता के ज्वलंत उदाहरण हैं। किसी भी तरह के अन्याय से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। उन्होंने खुद अन्याय का कोई कार्य कभी नहीं किया। अन्याय होते देखना भी उनके लिए असंभव था। राज्य का बड़े-से-बड़ा अधिकारी भी यदि अन्याय करता तो वह स्वयं न्याय प्रदान कर देती थीं।

मुगल राज्य में न्यायालय बहुत कम थे। होलकर राज्य में नियमबद्ध न्यायालयों की शुरुआत अहिल्याबाई के समय से ही हुई। प्रजा को न्याय मिले, इस हेतु उन्होंने राज्य में अनेक स्थानों पर न्यायालयों की स्थापना कर, योग्य न्यायधीशों की नियुक्ति की थी। गांवों में पंचायतों की सर्वत्र स्थापना कर उन्हें बड़ा महत्व व न्यायदान के विस्तृत अधिकार सौंप दिए थे। उनके सुयोग्य मार्गदर्शन व कठोर नियंत्रण में न्यायालय व पंचायतें न्यायदान का कार्य बहुत अच्छी तरह से कर रही थीं। इन न्यायालयों के कार्यों का संपूर्ण विवरण नियमपूर्वक राज्य के उच्च अधिकारियों व अहिल्याबाई के पास पहुंचता था। जिन लोगों को इनके न्यायदान से संतोष नहीं होता था, वे सीधे बिना रोक-टोक के उनके पास पहुंच जाते थे। वे न्यायासन पर बैठकर व सारे प्रकरणों को स्वयं सुनकर न्याय करती थीं। उनके न्याय से दोनों पक्षों को सदैव पूर्ण संतोष व समाधान होता था। लोगों की उनके प्रति इतनी श्रद्धा थी कि उनके निर्णय को अमान्य करना लोग पाप समझते थे। अहिल्याबाई के राज्य में न्यायदान अत्यंत सरल, सुगम व सस्ता था। न्याय में देर या अंधेर का काम नहीं था। भ्रष्टाचार के द्वारा अपने पक्ष में न्याय प्राप्त करा लेना तब सर्वथा असंभव ही था। सबको बिना किसी भेदभाव के पूर्ण न्याय मिलता था।

व्यक्तिगत जीवन में वे अत्यंत दयालु व क्षमाशील थीं परंतु न्यायदान के समय वे पूर्ण निष्पक्षता व कठोरता से काम लेती थीं। कानून व मर्यादा भंग करने वालों तथा प्रजा का अहित करने वालों के प्रति उन्होंने न तो कभी दया दिखाई और न कभी क्षमा किया। अपराधी को वे सदैव एक अपराधी के रूप में ही देखती थीं, फिर भले ही वह कितना भी उच्च अधिकारी, सरदार या राजवंश का सदस्य ही क्यों न हो।

अनेक व्यक्ति अपने पारिवारिक झगड़े लेकर भी उनके पास पहुंचते रहते थे। वे उनके झगड़ों को सुलझातीं और वे सब पूर्ण संतुष्ट व प्रसन्न होकर लौटते थे। प्राय: लोग अपने घर-गृहस्थी की निजी बातें भी निस्संकोच सामने रखकर उनकी राय लेकर काम करते थे। देवी मां सबकी बातें बड़े धीरज व ममत्व से सुनकर सबको उचित मार्गदर्शन व आवश्यक सहायता देकर सबके घरों को स्वर्ग बनाने में सदैव सहायक होती थीं। न्यायालय में जाने के पहले लोग अहिल्याबाई के पास पहुंच जाते थे और फिर न्यायालय में जाने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती थी। पूना दरबार में चल रहे अनेक मामलों को भी उन्होंने बड़े अच्छे ढंग से सुलझा दिया था। देश के कई राजे-रजवाड़े अपने

कौटुंबिक व अन्य झगड़ों को मिटाने के लिए उनके पास ही दौड़े आते थे ।

एक बार तत्कालीन ग्वालियर व होलकर राज्यों में एक भूमिखंड को लेकर वर्षों तक विवाद चलता रहा । दोनों पक्ष उस जमीन पर अपना अधिकार बताते थे । अंत में दोनों पक्षों ने किसी एक पंच से न्याय कराने का निर्णय किया । दोनों पक्षों ने बहुत सोच विचार कर इस कार्य के लिए देवी अहिल्याबाई का नाम ही तय किया । मजेदार बात यह थी कि अहिल्याबाई स्वयं विवादग्रस्त एक पक्ष से संबंधित थीं । अहिल्याबाई द्वारा दिया गया निर्णय अनूठा था । उन्होंने कहा कि दोनों पक्ष उस जमीन पर से अपना अधिकार छोड़ कर उसे गोचर भूमि के रूप में बिना लगान के छोड़ दें । तदनुसार यह विशाल भूमिखंड गौओं के लिए छोड़ दिया गया और मध्यभारत के निर्माण तक उसी रूप में रहा । इस एक ही घटना से देवी की न्यायप्रियता की व उनके प्रति लोगों की कैसी भावनाएं थीं, यह बहुत अच्छी तरह से पता चलता है ।

मराठी के सुप्रसिद्ध कवि मोरापन्त ने यथार्थ ही लिखा था —

देवी अहिल्याबाई । झालीस जगत्त्रयांत तू धन्या ।

न न्याय-धर्म-निरता अन्या कलिमाजि ऐकिली कन्या ॥

अर्थात हे देवी अहिल्याबाई । तुम तीनों लोकों में धन्य हो । कलियुग में तुम्हारे जैसी न्यायी और धर्मपरायण अन्य नारी देखी-सुनी नहीं गई ।

कृषि और कर-व्यवस्था

अहिल्याबाई ने राज्य की व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने व करों की वसूली के लिए समय समय पर कई कानून बनाए थे । उन्होंने जनता के लिए अहितकर कई पुराने कानूनों व नियमों को समाप्त कर दिया था । उनका कहना था कि नियम प्रजा के हित के लिए हैं और जिन कायदों व नियमों से प्रजा की हानि होती हो, ऐसे नियम व्यर्थ हैं ।

सारे राज्य को उन्होंने जिलों व तहसीलों में बांटकर उन पर सुयोग्य अधिकारियों की नियुक्ति की थी । गांवों में पंचायतों को बड़ा मान व महत्व दे रखा था । उनकी छत्रछाया में पंचायतों ने बड़ी प्रगति की थी । जनता के हितों की दृष्टि से पंचायतें बहुत अच्छा काम कर रही थीं । उनके समय में निष्पक्षता से कार्य करने के लिए पंचायतें विख्यात हो गई थीं । पंचायतों को उन्होंने बड़े अधिकार भी दे रखे थे ।

शासनारूढ़ होते ही अहिल्याबाई ने खेती और किसानों की उन्नति की ओर ध्यान दिया । खेती के महत्व को वे अच्छी तरह से जानती थीं । खेती व किसानों के लाभ के लिए उन्होंने बहुत से अच्छे कार्य किए । किसानों को उन्होंने सब तरह की सुविधाएं दीं । उन्होंने कर्मचारियों को आदेश दिए थे कि किसानों की समस्याओं को दूर करने में देरी न करें । कृषि अधिक परिमाण में हो और अच्छी हो, इस ओर विशेष ध्यान दिया जाता था । यदि किसी वर्ष वर्षा की कमी से फसलें कम होतीं, तो किसानों को लगान में छूट

व अन्य सुविधाएं दी जाती थीं। सेनाओं के आवागमन आदि के कारण फसलों की हानि होती तो तुरंत उसकी क्षतिपूर्ति कर दी जाती थी।

शासकीय कर्मचारियों के आतंक से किसान मुक्त थे। भूमि पर लगान भी बहुत साधारण था। अन्य किसी प्रकार के कर किसानों पर नहीं थे। इन समस्त सुविधाओं के कारण किसान बड़े सुखी थे। फसलें भी भरपूर होती थीं। अहिल्याबाई के शासन में प्रजा को खाने-पीने की कमी कभी नहीं हुई। अनाज से किसानों के घर व मंडियां भरी रहती थीं। अनाज, घी, दूध, तेल आदि जीवनोपयोगी वस्तुएं सुलभ व बहुत सस्ती थीं। उनके समय में खेती की बहुत उन्नति हुई। उनके तीस वर्षीय शासनकाल में एक बार भी राज्य में अकाल नहीं पड़ा। भूमि का लगान वसूल करने की दृष्टि से उन्होंने राज्य को तीन भागों में बांट दिया था—उत्तरी भाग, मध्य भाग व दक्षिणी भाग। उत्तरी भाग में इंदौर, तराना व राजपूताने की भूमि थी। मध्य भाग में महेश्वर व आसपास का क्षेत्र था और दक्षिण भाग में सतपुड़ा से दक्षिण की ओर की भूमि थी।

व्यापार को बढ़ाने के लिए भी उन्होंने बहुत कुछ किया। राज्य में शांति व व्यवस्था थी, इसलिए बाहर के व्यापारी भी निर्भय होकर राज्य में व्यापार करते थे। देश-विदेश की वस्तुओं का राज्य में अच्छा व्यापार होता था। महेश्वर में उनके द्वारा संरक्षित वस्त्रोद्योग दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा था। व्यापारियों से विभिन्न वस्तुओं पर लिया जाने वाला कर निश्चित था। यह कर बहुत ही साधारण होता था। कर का हानिकारक परिणाम व्यापार पर नहीं होता था।

अहिल्याबाई का कठोर आदेश था कि निर्धारित करों से एक पैसा भी अधिक न लिया जाए। करों की वसूली के नियम भी अत्यंत सरल थे। इसके विपरीत कार्य करने वाले कर्मचारियों को अधिक वसूल किया गया पैसा व्यापारी को लौटा कर दंड भी भुगतना ही पड़ता था। करों व कर्ज की वसूली कठोरता से न करने के अहिल्याबाई के कठोर आदेश थे। उन्होंने पहले से चले आ रहे कई अन्यायपूर्ण करों को बंद कर दिया था।

एक बार राज्य के कुछ अधिकारियों ने उन्हें सुझाव दिया कि कुछ वस्तुओं पर पड़ोसी राज्यों में अधिक कर लिया जाता है, अतः अपने राज्य में भी वह बढ़ा दिया जाए। अहिल्याबाई ने निर्णय दिया—"नहीं, कर और कम कर दिया जाए। प्रजा के उपयोग की वस्तुओं पर अधिक कर लगाना उचित नहीं।" और देवी के आदेश से वह कर और भी कम कर दिया गया।

राज्य में करों का भार जनता पर बहुत ही कम था। कर इतने कम थे कि देने वाले को वे जरा भी अखरते नहीं थे। कर चुकाने में प्रजा को किसी तरह के संकट का अनुभव नहीं होता था। प्रजाजन स्वयं ही अपने हिस्से का पूरा कर खजाने में जमा कर आते थे, क्योंकि वे अच्छी तरह से जानते थे कि उनके द्वारा खजाने में जमा किया गया प्रत्येक

पैसा धर्म-कार्य व परोपकार में ही खर्च होगा ।

सेना

चन्द्रावतों का कठोरतापूर्वक दमन करने के बाद अहिल्याबाई के शासनकाल में पूर्ण शांति व व्यवस्था रही । उनके विरुद्ध विद्रोह करने का साहस फिर किसी को नहीं हुआ । इस अवधि में पेशवा के हितों की रक्षा के लिए तुकोजीराव को अवश्य कई युद्ध लड़ने पड़े । पर वे सारे युद्ध होलकर राज्य की सीमा के बाहर लड़े गए थे । अहिल्याबाई द्वारा की गई धन व सैनिकों की सहायता व कुशल मार्गदर्शन के कारण इन युद्धों में तुकोजी सदैव विजयी हुए थे ।

एक बार जयपुर के राजा से कर के रुपए वसूल करने तुकोजीराव सेना-सहित गए हुए थे । मार्ग में सिंधिया की सेना ने अकस्मात उन पर आक्रमण कर दिया । तुकोजी ने सारे समाचार अहिल्याबाई के पास भेजकर सैनिक व रुपयों की मांग की । सिंधिया के इस आक्रमण का समाचार सुनकर अहिल्याबाई बहुत क्रोधित हो गईं । उन्होंने तुरंत पांच लाख रुपए व 1800 सैनिक रवाना कर दिए और तुकोजी को लिखा—'घबराना मत । उनको हराकर ही चैन लेना । रुपए और सेना का पुल बांध दूंगी । और वृद्धावस्था के कारण तुम्हें कोई कठिनाई हो तो मुझे लिख भेजो । मैं खुद युद्ध के मैदान में पहुंच जाऊंगी ।'

इस तेजस्वी संदेश ने बड़ा काम किया । सेना व धन भी समय पर पहुंच गए थे । अंत में होलकरों की ही विजय हुई ।

राज्य की आंतरिक व्यवस्था व बाह्य सुरक्षा के लिए सेना के महत्व को वे अच्छी तरह से जानती थीं । जीवन भर धर्माचरण में लगे रहने पर भी उन्होंने सेना की उपेक्षा नहीं की । उन्होंने अपनी सेना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कर युद्ध-विद्या में पूर्ण शिक्षित कर ली थी । युद्ध सामग्री का बड़ा भंडार सदैव तैयार रहता था । वे सैनिकों को कभी भी किसी तरह की असुविधा नहीं होने देती थीं । उनके वेतन व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति सदैव समय पर कर देती थीं । युद्ध में जाने वाले सैनिकों के परिवारों की देख-रेख वे बड़ी ममता से करती थीं । युद्ध में वीर-गति पाने वाले सैनिक के परिवारों का पालन-पोषण राज्य की ओर से किया जाता था । इन समस्त स्नेहपूर्ण सुविधाओं के कारण सैनिक भी अपने प्राण हथेली पर रखकर लड़ते थे और प्राय: विजयी होकर लौटते थे ।

एक बार तुकोजी ने सेना को अहिल्याबाई से लड़ने के लिए उकसाया, तो सैनिकों ने उन्हें साफ कह दिया कि वे किसी भी शत्रु से, यहां तक कि पेशवा से भी लड़ सकते हैं, पर अहिल्याबाई के विरुद्ध कभी भी शस्त्र नहीं उठाएंगे । इस घटना से स्पष्ट है कि सेना उन पर कितनी श्रद्धा-भक्ति रखती थी ।

उन्होंने सेना व शस्त्रों को आवश्यकता से अधिक कभी नहीं बढ़ाया । इसे वे धन का अपव्यय समझती थीं । उनकी सेना छोटी पर युद्ध विद्या में निपुण व अनुशासित थी । वह राज्य को आंतरिक अशांति व बाह्य शत्रुओं से मुक्त रखने में पूर्ण रूप से समर्थ सिद्ध हुई थीं । इतना ही नहीं, उन्होंने तो अपने मालिक पेशवा को भी आवश्यकतानुसार सैनिक सहायता देकर मराठा-साम्राज्य को शक्ति-संपन्न करने में पूर्ण रूप से सहयोग दिया था । समय पड़ने पर वे बड़ी शीघ्रता से नई सेना तैयार कर, उसे शस्त्रास्त्रों से लैस कर देती थीं । उनके समय में महेश्वर, चांदवड़, सेंगवा, आसीरगढ़, जालना, कुशलगढ़ व हिंगलाजगढ़ में किले थे । इनमें सुयोग्य अधिकारियों के अधीन सेना रहती थी ।

अहिल्याबाई की शिक्षा-दीक्षा वीर सेनापति मल्हारराव द्वारा हुई थी । अत: उनमें मल्हारराव की अनेक विशेषताएं थीं । सेना व युद्ध क्षेत्र से संबंधित हर बात की उन्हें पूरी जानकारी थी, क्योंकि मल्हारराव के साथ कई बार वे युद्ध-क्षेत्र में गई थीं । युद्ध में जाते समय वे पुरुषों के समान घोड़े पर बैठ शस्त्र धारण कर सेना का नेतृत्व करती थीं ।

मल्हारराव ने राज्य में अठारह सरंजामी सरदार नियुक्त किए थे । इनमें से प्रत्येक के अधीन राज्य का एक एक लाख रुपए का क्षेत्र था । इन सरदारों को इस खर्च से एक निश्चित संख्या में पैदल व घुड़सवार सेना को सदा पूर्ण रूप से तैयार रखना पड़ता था । अहिल्याबाई ने इस सरदार प्रथा को विधिवत चालू रखा । वे इन सरदारों की प्रतिष्ठा व सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान व साथ ही उन पर अच्छी तरह से नियंत्रण भी रखती थीं । अहिल्याबाई ने सन 1772 में जी.पी. कर्नल बाइड नाम के अमेरिकन के निर्देशन में पाश्चात्य शैली की सेना गठित की थी । बाइड के साथ किया गया समझौता अहिल्याबाई की कूट नीतिज्ञता का अच्छा नमूना है ।

युद्ध से उन्हें घृणा थी । युद्ध से होने वाली हानियों से वे परिचित थीं । इसलिए प्रारंभ में युद्ध को रोकने के लिए वे पूरे प्रयत्न करती थीं, लेकिन जब युद्ध करना अवश्यम्भावी हो जाता तो फिर वे पीछे नहीं हटती थीं । तब वह साक्षात रणचंडी बन जाती थीं । रामपुरा के विद्रोही सरदार सौभागसिंह को उन्होंने तोप के मुंह से उड़वा दिया था ।

उनकी नीति कभी भी साम्राज्यवादी नहीं रही । दूसरों के राज्य को छीनकर अपने राज्य की सीमाएं बढ़ाने का विचार उन्होंने कभी भी नहीं किया । उन्होंने अपना रोबदाब बढ़ाने या व्यर्थ किसी को सताने के लिए कभी कोई कार्य नहीं किया । पड़ोसी व देश के अन्य राज्यों से उन्होंने सदैव अच्छे संबंध बनाए रखे । उनके उच्च विचारों व पवित्र जीवन से सारे राज्य भलीभांति सुपरिचित थे । देश के समस्त राजागण उनके प्रति बड़ी श्रद्धा व आदर की भावना रखते थे । इसी कारण अन्य अनेक राज्यों में उनके द्वारा इतने अधिक निर्माण कार्य सरलता से हो सके । उनकी महानता के कारण अन्य राज्यों के आक्रमण उनके समय में नहीं हुए । यह सब उन दिनों देश में बह रही हवा से एकदम विपरीत था ।

कोष

एक बार सूबेदार मल्हारराव ने पेशवा के सम्मुख यह इच्छा प्रकट की कि शासन के लिए सौंपे गए प्रांत में से कुछ भाग उन्हें इनाम के रूप में दिया जाय । अपने प्रतापी सूबेदार की इच्छा मानकर पेशवा ने लगभग तीन लाख रुपए वार्षिक आमदनी का इलाका मल्हारराव की पत्नी गौतमाबाई के नाम कर दिया । तत्कालीन मरहठा राज्यों में ऐसी आमदनी को 'खासगी' कहते थे । इस खासगी इलाके में तथा उसकी आमदनी में धीरे धीरे वृद्धि होती गई और अहिल्याबाई के समय में यह आमदनी लगभग पंद्रह लाख रुपयों तक पहुंच गई थी । यह सब उनकी निजी संपत्ति थी । इस पर पेशवा या और किसी का कोई अधिकार या नियंत्रण नहीं था । सूबेदारी की तो कुछ शर्तें थीं । वह पेशवा द्वारा छीनी जा सकती थीं । परंतु खासगी जागीर वंश परंपरा के लिए, बिना किसी शर्त के थी ।

इस खासगी जागीर के कोष में मल्हारराव के स्वर्गवास के समय सोलह करोड़ रुपए जमा थे । इस धन को खर्च करने के लिए अहिल्याबाई पूर्ण स्वतंत्र थीं । पर उन्होंने इस सारे धन को शिवार्पण कर उस पर बिल्वपत्र रख दिया । उन्होंने इस कोष में भी वृद्धि ही की । यह सारा धन उन्होंने दान-धर्म में ही खर्च किया । इसी कोष में से उन्होंने देश-भर में अगणित मंदिर बनवाए । अनेक लोकोपकारी निर्माण-कार्य कराए व दान-धर्म की सतत बहने वाली पावन सरिता प्रवाहित की ।

अहिल्याबाई के समय में खजाने के दो भाग थे, खासगी व सरकारी । खासगी का वर्णन ऊपर हो चुका है । सरकारी खजाने का संबंध प्रांत की सूबेदारी के कारण विविध करों आदि से प्राप्त आमदनी से था । यह उनकी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी । पेशवा दरबार के कागज-पत्रों के अनुसार मल्हारराव के अधीन प्रांत की आमदनी साढ़े चौहत्तर (74.50) लाख रुपए थी । अहिल्याबाई के समय में यह आमदनी बढ़कर एक करोड़ पांच लाख रुपए के लगभग हो गई थी ।

अहिल्याबाई के इस खजाने की विशेषताए अन्यत्र मिलना असंभव है । तत्कालीन अनेक राजा-महाराजाओं का खजाना बहुत बढ़ा हुआ था । उनके पास उनसे बहुत अधिक धन था । परंतु वह धन अन्याय, लूट-खसोट व प्रजा का शोषण कर प्राप्त किया गया था । ऐसे राज्यों में राजा तो सोने के झूले में झूलते थे और बेचारी गरीब प्रजा दाने दाने को तरसती थी । इसके विपरीत देवी का खजाना न्याय व नियमों से प्राप्त करों से भरा हुआ था । उसमें अन्याय, लूट या शोषण से प्राप्त एक भी पैसा नहीं था । अहिल्याबाई ने न तो किसी को लूटा और न किसी का शोषण किया । भूमि का लगान, अन्य कर और आमदनी के सारे साधन निश्चित, उचित व न्यायपूर्ण थे । अधिकारी भी सीमित, योग्य व चरित्रवान थे । इन कारणों से राजा और प्रजा दोनों की आर्थिक स्थिति

सुदृढ़ थी।

अहिल्याबाई ने खासगी व सरकारी कोषों को नियम व व्यवस्था में पूर्ण रूप से बांध रखा था। आमदनी व खर्च निर्धारित नियमों के अनुसार ही होता था। उसमें जरा भी गड़बड़ नहीं होती थी। वे स्वयं प्रत्येक पैसे पर अपनी पैनी नजर रखती थीं। उनकी अनुमति के बिना एक पैसा भी खर्च नहीं होता था। आमदनी व खर्च का पूर्ण हिसाब व्यवस्थित रीति से रखा जाता था। फिजूलखर्ची नाम का शब्द उनके जीवन में ढूंढ़ने पर भी मिलना संभव नहीं। पूर्ण दक्षता व मितव्ययिता से प्रत्येक पैसा खर्च किया जाता था।

दोनों कोषों की आय के साधन जैसे निश्चित थे, वैसे ही उनके खर्च के मद भी निश्चित थे। खासगी कोष धार्मिक कार्यों में व सरकारी कोष शासकीय व प्रजा के विविध कल्याण कार्यों में खर्च होता था। सरकारी कोष में से अहिल्याबाई अपने लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करती थीं। पर दोनों कोषों पर उनका पूर्ण नियंत्रण रहता था।

अहिल्याबाई के समय में दोनों कोषों के बढ़ने व प्रजा के समृद्ध होने के दो प्रमुख कारण थे। प्रथम तो यह कि उनके राज्य-काल में शांति व व्यवस्था स्थापित रही। युद्ध, संघर्ष आदि से राज्य मुक्त था। न तो राज्य में अकाल पड़ा, न कोई वर्ष खराब गया और प्रजा बड़े सुख-चैन से रही। दूसरे, अहिल्याबाई के साधारण रहन-सहन व पवित्र जीवन के कारण उनका निजी खर्च बहुत ही कम था। उनका कोई भार कोष या जनता पर नहीं था।

19

अनन्तफन्दी

अनन्तफन्दी नाम का गायक व कवि देवी का समकालीन था। उसके जैसा गायक दूर दूर तक नहीं था। उसके गले में गजब की मिठास और आकर्षण था। गाने का ढंग उसका इतना अच्छा था कि डफ हाथ में लेकर जब वह गाने लगता तो लोग मंत्रमुग्ध हो वहां से हटने का नाम नहीं लेते थे। वह खेल-तमाशे भी करता था। उसके गाने-बजाने व खेल-तमाशे की कीर्ति दूर दूर तक फैली हुई थी।

उसका पूरा नाम अनन्तफन्दी धोलप था। वह ब्राह्मण था, कवि और घुमक्कड़ भी था। दक्षिण में संगमनेर का रहने वाला था। अहिल्याबाई की कीर्ति सुन उनके दर्शन करने वह चल पड़ा। राह में सतपुड़ा पहाड़ में भीलों ने उसे लूट लिया और बांध कर उसे अपने नायक के पास ले गए। वहां उसने डफ पर ऐसी मुधर तान छेड़ी कि नायक व सारे भील मस्त हो गए। अपना रंग और जमाने के लिए फन्दी ने खेल-तमाशे भी दिखाए। नायक प्रसन्न हो गया और उसने फन्दी का सारा सामान लौटाकर उसे मुक्त कर दिया।

चलते समय नायक द्वारा पूछे जाने पर फन्दी ने बताया कि वह अपने घर से देवी अहिल्याबाई के दर्शन करने निकला है। देवी का नाम सुनते ही अपने साथियों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार पर वह नायक बहुत दुखी व लज्जित हुआ। उसने फन्दी से क्षमा मांग ली और अपने चार-पांच आदमी साथ देकर उसे आदरपूर्वक महेश्वर पहुंचा दिया।

महेश्वर में अहिल्याबाई के दर्शन कर उसे बड़ा सुख मिला। उसने देवी से उसका गाना सुनने का निवेदन किया। अहिल्याबाई ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली व निश्चित दिन महेश्वर में दूर दूर की जनता एकत्रित हुई। वे स्वयं भी उपस्थित थीं। फन्दी ने बड़ी रसभरी लावणियां सुनाईं। खेल-तमाशे भी दिखाए। सबको बहुत आनंद आया।

दूसरे दिन राजदरबार में अहिल्याबाई ने फन्दी को बहुमूल्य पुरस्कार देकर आशीर्वाद दिया। यह सब पाकर वह बहुत प्रसन्न व संतुष्ट हो गया। फिर उन्होंने उसे पास बुलाया और कहा—"फन्दी, तुम ब्राह्मण हो। इस प्रकार के खेल-तमाशे तुम्हें शोभा नहीं देते। तुम अपनी कवित्व-शक्ति का और जीवन का कितना दुरुपयोग कर रहे हो।

जो सर्वव्यापी और जगताधार है, जो इस जगत का निर्माता और परम कृपालु है, उस परब्रह्म के ही गीत तुम क्यों नहीं गाते ? इस खेल-तमाशे से तुम्हारा परलोक सुधरने से रहा। भगवत-भक्ति से ही तुम्हारा यह लोक-परलोक सुधरेगा। स्वार्थ भी होगा व परमार्थ भी।"

देवी के वचनों का फन्दी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसका जीवन उसी समय पूर्ण रूप से बदल गया। उसने अपनी डफ वहीं फोड़ डाली और खेल-तमाशे को भी सदा के लिए त्याग दिया। वह भगवान का भक्त बन गया और अब भक्तिरस के गीत ही गाने लगा। जब वह घर लौटा तो शृंगार रस का वह अलबेला राजकुमार पूरा भक्त बन गया था।

फन्दी के निवास-स्थान संगमनेर में स्वामी फन्दी नाम का एक प्रसिद्ध स्थान था। वहां प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला लगता था। दूर दूर के लोग वहां विशेषकर फन्दी की लावणियां सुनने के लिए ही एकत्रित होते थे। पर फन्दी गाने-बजाने को त्याग चुका था। लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। एक भारी भीड़ फन्दी के पास पहुंची और एक बार अपना रंग जमाने के लिए मनाने लगी। वे कहने लगे—'फन्दी, बस एक बार फड़कती हुई रस-भरी तान छेड़ दो, फिर मजे से भगवान की भक्ति करते रहना। देखो लोग कितनी दूर दूर से आए हैं !'

लोगों के विशेष आग्रह के कारण विवश हो फन्दी ने आखिर डफ उठाई और एक बार लावणियां गाने मेले में पहुंचा। मेले में आनंद की लहर दौड़ गई। पर योग कुछ ऐसा बना कि पूना जाती हुई अहिल्याबाई उसी समय उधर से निकली। भीड़ देख उन्होंने पता चलाया। फन्दी के गाने की बात सुन वे भी वहां पहुंच गईं। अहिल्याबाई को देखते ही फन्दी को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई। उसने देवी को प्रणाम किया और शृंगार रस से भरपूर गीत के बदले भगवान की भक्ति से परिपूर्ण एक भावपूर्ण गीत उसने छेड़ दिया। उसका गायन इतना मधुर था और वह इतना तन्मय होकर गा रहा था कि उसे किसी बात का भान नहीं रहा। भावावेश में गाते हुए वह नृत्य करने लगा। वहां एक अद्भुत आनंद छा गया। सारी भीड़ मंत्रमुग्ध हो गई। लोग यह भी भूल गए कि वह गुदगुदी करने वाली लावणियां व तमाशा देखने वहां जमा थे। अहिल्याबाई को भी बड़ा सुख मिला।

गीत समाप्त होने पर अहिल्याबाई ने फन्दी को अपने पास बुलाया। बड़े स्नेह से आशीर्वाद दे अपने हाथ का अमूल्य कंगन उसे दे डाला। फन्दी ने देवी के चरणों में माथा टेका और सारी भीड़ ने आनंदित हो देवी अहिल्याबाई व फन्दी का जय जयकार किया। शेष जीवन अनन्तफन्दी ने एक श्रेष्ठ भक्त कवि व कीर्तनकार के रूप में बिताया। मराठी साहित्य में उसका महत्वपूर्ण स्थान है।

20

दान-धर्म

सेवा, त्याग व दान-धर्म का हिंदू संस्कृति में बड़ा महत्व है। समस्त जीवों को आत्मवत मानकर उनकी निष्काम सेवा को यहां भगवान की पूजा का ही एक रूप माना गया है। अहिल्याबाई ने अपना सारा जीवन व राज्य भगवान की इस पूजा के लिए ही समर्पित कर दिया था। उनका संपूर्ण जीवन सेवा, त्याग व दान-धर्म के कार्यों से भरपूर था। उनके सेवा-कार्यों का क्षेत्र केवल उनका राज्य या किन्हीं विशिष्ट लोगों तक ही सीमित नहीं था बल्कि पूरे देश व समूची मानवता के लिए था। सारा विश्व उनका घर व विश्व के सारे जीव उनका परिवार था। उनके परम स्नेहमय व दयालु अंतःकरण में सबके लिए समान स्थान था। सबके दुख दूर कर सबको सुखी करने के लिए वे जीवन भर सतत कार्यरत रहीं। यह कर्तव्य पालन उन्होंने बड़ी तत्परता व पवित्रता से किया। सच्चे अर्थों में वे एक महान कर्मयोगिनी थीं।

अपने जीवन-काल में जितने सेवा-कार्य, दान-धर्म व निर्माण-कार्य उन्होंने किए उसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। ये कार्य पूरे भारतवर्ष में फैले हुए हैं व संख्या में बहुत अधिक हैं। अहिल्याबाई की यह भी एक दुर्लभ विशेषता है कि इन अमूल्य व अगणित कार्यों का कोई लेखा-जोखा रखना उन्होंने जरा भी आवश्यक नहीं समझा। प्रचार, प्रभाव व कीर्ति की ओर उनका कोई ध्यान ही नहीं था। निष्काम कर्मयोग का ऐसा अनूठा उदाहरण दुर्लभ है।

वे किसी को भी दुखी, दीन-हीन या भूखा-प्यासा नहीं देख सकती थीं। सबको सुखी करने के लिए भोजन, अनाज, वस्त्र, धन आदि द्वारा वे नित्य दीन-दुखियों की सेवा करती थीं। कोई भी दुखी व्यक्ति उनके पास से निराश नहीं लौटता था। त्योहारों पर वे गरीबों को अन्न, मिठाइयां व वस्त्र देती थीं। महेश्वर, कोल्हापुर, चिंचवाड़ व अन्य कई स्थानों पर गरीबों को सहायता देने के लिए उन्होंने विशेष प्रबंध किए थे।

नर्मदा तथा क्षिप्रा नदियों के उद्‌गम स्थानों पर, अनेक तीर्थों में व देश भर में अनेक स्थानों पर उन्होंने अन्नसत्र व सदाव्रत प्रारंभ किए थे जहां साधु-संतों, असहायों व दीन-दुखियों को भोजन, कपड़े, कंबल व धन आदि की सहायता दी जाती थी। समस्त

अन्नसत्रों व सदाव्रतों की जानकारी भी कहीं उपलब्ध नहीं है । इन स्थानों पर अन्नसत्रों का पता चला है—श्री बद्रीकेदार के मार्ग में, रामेश्वरम, जगन्नाथपुरी, द्वारका, पैठणा, महेश्वर, वृंदावन, सुलपेश्वर, हंडिया, उज्जैन, पुष्कर, पंढरपुर, चिंचवाड़ व चिखलदा । सदाव्रत इन स्थानों पर थे—आलमपुर, देवप्रयाग, पुष्कर, राजापुर आदि । पंढरपुर, परशुराम क्षेत्र, परली, टोकी आदि स्थानों पर अर्थदान की विशेष व्यवस्था की थी । सुलपेश्वर में प्रत्येक साधु व यात्री को एक एक कंबल व लोटा दिया जाता था । नर्मदा परिक्रमा करने वालों की सुविधा के लिए उन्होंने नर्मदा के दोनों किनारों पर कई धर्मशालाएं बनवाई थीं व अन्नसत्र शुरू किए थे । खासगी ट्रस्ट इंदौर द्वारा ओंकारेश्वर, महेश्वर में तथा इंदौर में, अभी भी अन्नसत्र संचालित किए जा रहे हैं और देवी की भावनाओं के अनुरूप दान-धर्म व सेवा-कार्य भी किए जाते हैं ।

ब्राह्मणों पर अहिल्याबाई की बड़ी श्रद्धा-भक्ति थी । ब्राह्मणों को वे नित्य बहुत दान-धर्म करती थीं । वेदशास्त्रों के ज्ञाता व धर्म-कर्म के जाननेवाले ब्राह्मणों की उन्होंने सब तरह से सहायता की थी । उन्हें राज्याश्रय, सम्मान व धन प्रदान किया था । कई ब्राह्मणों को भूमि, मकान, गांव आदि वंश-परंपरा के लिए दानपत्र लिख दिए थे । उनके समय में देश के अनेक तीर्थ स्थानों में धार्मिक अनुष्ठानों, पूजा-पाठ व धार्मिक कार्यों की जैसे बाढ़ ही आ गई थी । महेश्वर में व अन्य तीर्थस्थानों में हजारों ब्राह्मणों द्वारा विविध जप, पूजन, अनुष्ठान आदि किए जाते थे । महेश्वर में पुराणों का पाठ, कीर्तन व ब्राह्मण भोजन आदि प्रतिदिन होते थे ।

विद्वानों को देवी का कितना आत्मीयतापूर्ण सहयोग प्राप्त था, इसका वर्णन एक पत्र में इस प्रकार है—"व्यंकटरमण शास्त्री का स्वास्थ्य ठीक नहीं था । तब बाई साहेब ने उन्हें दो सौ रुपए दवा आदि के लिए दिए थे । शास्त्री के स्वर्गवास के बाद उत्तर-क्रिया हेतु तीन सौ रुपए दिए । तेरहवें दिन देवी उनके घर गईं और उनके पुत्र को वस्त्र भेंट में दिया ।"

श्रावण मास में धार्मिक कार्यों की बड़ी धूम रहती थी । एक श्रावण में महेश्वर में हो रहे भारी आयोजनों का वर्णन पेशवा के वकील विट्ठल शामराज ने सन 1781 में पेशवा को लिखे एक पत्र में इस प्रकार किया है—"यहां श्रावण मास की बड़ी धूम है । रोज ढाई-तीन हजार ब्राह्मणों का भोजन होता है । 300 ब्राह्मण अनुष्ठान, 100 ब्राह्मण शिवकवच, 150 ब्राह्मण शिवस्मरण, 100 ब्राह्मण सूर्य-नमस्कार व सैकड़ों अन्य धार्मिक कार्यों में लगाए गए हैं । इन सारे ब्राह्मणों के भोजन, दक्षिणा आदि के सिवा अन्य दान-धर्म भी बहुत हो रहा है ।..." इसी प्रकार एक अन्य पत्र में उसने लिखा है—"ग्रहण के अवसर पर उन्होंने एक लाख रुपए बांटे । अनाज, धन, स्वर्ण आदि का दान दिया । एक हाथी भी दान दिया ।" कुरुक्षेत्र में अहिल्याबाई को सोने और चांदी से कई बार तोलकर सारा सोना-चांदी ब्राह्मणों को दान कर दिया था । अन्य पत्रों में लिखा है कि

"उत्तर हिंदुस्तान के दो-ढाई हजार व गुजरात आदि प्रांतों के हजारों ब्राह्मण श्रावण मास में महेश्वर आए हैं।"

धार्मिक पर्वों व विभिन्न अवसरों पर देश के तीर्थस्थानों की यात्रा के अवसर पर वे बहुत दान-धर्म करती थीं। ग्रहण पर ब्राह्मणों व गरीबों को हजारों रुपए, अन्न-वस्त्र, घोड़े, हाथी, गाय, भूमि आदि का वे दान करती थीं। गुप्त-दान भी उन्होंने बहुत दिया। अनेक तीर्थस्थानों के मंदिरों में मूर्तियों के वस्त्र-आभूषण, नैवेद्य, नन्दादीप, पूजन, रोशनी, भोजन, दक्षिणा आदि की उन्होंने स्थाई व्यवस्था की थी। पंढरपुर, रामेश्वर, काशी, आदि कई तीर्थस्थानों पर भगवान के लिए सोने व रत्नों के अनेक आभूषण बनवाकर भेंट किए थे। ये आभूषण बड़े कलापूर्ण हैं।

हर वर्ष महाशिवरात्रि पर देश के करीब 40 प्रमुख तीर्थस्थानों पर पूजन-अभिषेक हेतु श्री गंगोत्री से गंगाजल भेजने की स्थाई व्यवस्था देवी ने की थी। यह कार्य गंगोत्री व उस क्षेत्र के पंडे अभी भी करते हैं। उनके पूर्वजों को देवी ने इसी कार्य के लिए भूमि खरीदकर वंश-परंपरा के लिए दान में दी थी। देवी के समय में पंडों का समूह तांबे के घड़ों में गंगाजल लेकर उन्हें कांवड़ में रखकर पैदल तीर्थस्थानों में जाता था। उन्हें स्थान की दूरी के हिसाब से निर्धारित मार्ग व्यय भी तब दिया जाता था। इन तीर्थस्थानों पर गंगाजल की कांवड़ें जाती थीं—श्री रामेश्वर, मल्लिकार्जुन, जनार्दन, वासुदेव, पद्मनाथ जनार्दन, अभिशयन अनंत, बालाजी गिरि, गोकर्ण महाबलेश्वर, सुब्रह्मणेश्वर, पशुपतेश्वर, द्वारका, डाकोर, उत्कंटेश्वर, अवद्य जगन्नाथ, परली बैजनाथ, त्र्यम्बकेश्वर, रामपंचवटी, मातृगया, सिद्धेश्वर, भीमाशंकर, पंढरपुर, एकलिंग महादेव, कपिल मुनि, केदारेश्वर, सोरठी, सोमनाथ, नाथद्वारा, वृद्धेश्वर, महादेव, घृष्णेश्वर, लोटेश्वर, जेजूरी, महाकालेश्वर, राजराजेश्वर, ओंकारेश्वर, काशी विश्वेश्वर, बद्रीकेदारेश्वर, झारखंडी बैजनाथ आदि।

गंगाजल इन तीर्थस्थानों पर ले जाने की व्यवस्था अभी भी देवी द्वारा स्थापित वंश परंपरागत व्यवस्था के अनुसार चल रही है। पंडों के पास देवी द्वारा दी गई भूमि की सनदें हैं और वे इन सनदों को अमूल्य व गौरव की वस्तु मानते हैं। अब ये पंडे रेल व मोटर द्वारा गंगोत्री से गंगाजल लेकर पहले इंदौर आते हैं। यहां श्री खासगी ट्रस्ट के अधिकारियों द्वारा उनका स्वागत कर कांवड़ों को इंदौर के प्रसिद्ध जूना राजबाड़ा के श्री मार्तण्ड मंदिर में रखा जाता है। इंदौर से फिर वे पंडे कांवड़ें लेकर विभिन्न तीर्थस्थानों को जाते हैं। अब इनके खर्च की व्यवस्था खासगी ट्रस्ट[1] द्वारा की जाती है।

हिंदू धर्म में गंगाजी का व गंगाजल का बड़ा महत्व है। पूरे देश में स्थापित तीर्थस्थान भारत की एकात्मकता व राष्ट्रीयता के परिचायक हैं। भारत के तीर्थों में

1. देवी अहिल्याबाई द्वारा निर्मित कुछ स्थानों की व उनसे संबंधित सम्पत्ति की व्यवस्था व दान-धर्म खासगी ट्रस्ट द्वारा किया जाता है। ट्रस्ट का कार्यालय इंदौर में है।

गंगाजल पहुंचाने की श्रेष्ठ व्यवस्था द्वारा अहिल्याबाई ने धार्मिकता के साथ साथ राष्ट्रीय एकात्मकता की प्राचीन परंपरा को नवजीवन दिया था ।

उन दिनों देश में आवागमन के साधन आज जैसे अधिक, सरल व सुविधाजनक नहीं थे । यात्रियों की सुविधा के लिए देवी ने कई मार्ग बनवाए, बाग-बगीचे व अमराइएं लगाईं, सराएं बनवाईं । सन 1818 में कैप्टन स्टुअर्ट नाम का एक व्यक्ति हिमालय की यात्रा पर गया था । वहां केदारनाथ के मार्ग पर तीन हजार फुट की ऊंचाई पर अहिल्याबाई द्वारा निर्मित एक पक्की धर्मशाला उसने देखी थी ।

वे अन्य मतों व धर्मों के प्रति भी पूर्ण उदार थीं । राज्य व देश की कई दरगाहों, मसजिदों, मौलवियों व फकीरों को राज्याश्रय, धन, भूमि, जागीर आदि का दान किया था । होलकरों द्वारा जीते गए प्रदेशों में स्थित मसजिदों व दरगाहों को भी उन्होंने संरक्षण देकर सहायता दी थी और अनेक मसजिदों का जीर्णोद्धार भी किया था । अनेक फकीरों व मसजिदों को वे नियमित रीति से दान देती थीं । उनकी इस उदार नीति से मुसलमान प्रजा बहुत सुखी थी ।

उनकी करुणा व स्नेह की शीतल छाया मनुष्यों पर ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों पर भी थी । पशु-पक्षियों के लिए अनाज के भंडार व फसलों से भरे कई खेत खरीदकर छोड़ दिए जाते थे । चींटियों के लिए वन में आटा व मछलियों के लिए आटे की गोलियां बहुत बड़ी मात्रा में रोज जलाशयों में छोड़ी जाती थीं । गाय को वे बहुत मानती थीं । राज्य की ओर से अनेक स्थानों पर गायों व बछड़ों को घास-दाना आदि नियमित रीति से दिया जाता था । वनों में व गांवों के बाहर गाय-बैलों के चरने के लिए भूमि छोड़ी गई थी व कई जलाशय भी बनाए गए थे । ग्रीष्म ऋतु में कई स्थानों पर प्याऊ का प्रबंध होता था व ठंड में गरीबों को कंबल बांटे जाते थे । इन सारे कार्यों के लिए कई कर्मचारी नियुक्त थे ।

ये सारे सेवा-कार्य पूरे देश में थे और सबके हित के लिए थे । उनके उपयोग के लिए किसी से भी किसी तरह का शुल्क आदि नहीं लिया जाता था । एक प्रमुख विशेषता यह थी कि देवी ने इन समस्त कार्यों को राज्य से संबंधित नहीं रखा । वे अच्छी तरह से जानती थीं कि राज्य, शासकों तथा शासन की रीति-नीतियों में परिवर्तन होते ही रहेंगे । धर्म कार्यों को राज्य के आधीन रखने पर राज्यों में होने वाले परिवर्तनों का परिणाम उन कार्यों पर पड़े बिना नहीं रहेगा । इस परिणाम से धर्म कार्यों को सदा के लिए मुक्त रखने की उन्होंने बड़ी ही श्रेष्ठ व्यवस्था दूरदर्शिता के साथ कर दी थी । समस्त धार्मिक कार्यों को आर्थिक दृष्टि से पूर्ण स्वावलंबी कर व्यवस्था की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र रखा । समस्त स्थानों पर उन्होंने स्थाई व्यवस्थापक नियुक्त कर वहां के कार्यों का सारा उत्तरदायित्व वंश परंपरा के लिए उन्हें सौंप दिया । खर्च व व्यवस्था आदि के लिए उन समस्त स्थानों को राज्यों पर जरा भी आश्रित नहीं रखा ।

इस व्यवस्था से कई लाभ हुए। वे सारे कार्य स्थाई रूप से निर्विघ्नता से व सरलता से चलने लगे। राज्य से संबंधित न होने के कारण राज्य पर इनका न कोई बोझ रहा और न किसी तरह शासकीय कार्यवाहियों का चक्कर ही रहा। राज्य द्वारा उनके बंद किए जाने की भी संभावना नहीं रही। इस दूरदर्शी व्यवस्था का यह परिणाम हुआ कि राज्य और देश में हुए अनेक परिवर्तनों के बाद अभी भी वे कार्य विधिवत चल रहे हैं। उनके द्वारा दिए गए दान से अभी नियमित रीति से मंदिरों में पूजन होता है, तीर्थों में गंगाजल की कांवड़ें पहुंचती हैं और अन्नसत्र व अन्य सेवा-कार्य चलते हैं। यदि इन कार्यों को राज्य के अधीन रखा जाता तो वे कभी के बंद हो जाते।

सत्पात्रों को दान देने की सावधानी अहिल्याबाई अवश्य लेती थीं। उनसे पैसा मूंड़ने की मक्कारी कोई कर नहीं सकता था। कहते हैं, एक बार काशी से एक ब्राह्मण अहिल्याबाई के पास महेश्वर पहुंचा। उसने देवी की कीर्ति सुन रखी थी। वह बोला—'मां मेरा मकान जल जाने से नष्ट हो गया, नया मकान बनाने के लिए मुझे धन दो।'

देवी के आदेश से उस ब्राह्मण के महेश्वर में रहने व भोजन आदि की अच्छी व्यवस्था कर दी गई। वह वहां पूरा एक महीना रहा पर देवी ने उसे एक पैसा भी नहीं दिया। अंत में वह बहुत दुखी व निराश होकर रवाना हो गया। धन के लिए राजस्थान में कुछ नरेशों से मिलता हुआ 4-6 महीने बाद वह काशी पहुंचा तो वहां उसे अपना नया घर तैयार मिला। बात ऐसी बनी कि देवी ने काशी स्थित अपने कारभारी को पत्र द्वारा आदेश दिया था कि यदि उस ब्राह्मण का घर नष्ट हो गया हो तो नया घर बनाकर उन्हें आदर सहित भेंट कर दिया जाय। अपना नया मकान पाकर ब्राह्मण देवता को बड़ा आश्चर्य व आनंद हुआ।

अहिल्याबाई के इस अलौकिक धर्माचारण, असीम दान-धर्म व निर्माण-कार्यों के कारण तब से वे इन कार्यों का पर्याय ही बन गई हैं। दान-धर्म व मंदिरों के निर्माण की बात उठते ही अहिल्याबाई का नाम सामने आ जाता है। उनके इन कार्यों का व्यापक प्रभाव देवी के समय में अनेक राजा-रानियों व सामान्य जनता पर पड़ा था। तब अनेकों राजा-रानियों ने मंदिर बनवाए थे व दान-धर्म किया था।

मध्यप्रदेश में पश्चिम निमाड़ जिले के खरगोन शहर में तापीदास व बनारसीदास नाम के दो भाई बड़े धनवान साहूकार थे। वे निःसंतान मर गए। तापीदास की पत्नी ने महेश्वर में देवी से निवेदन किया कि मेरे पति व देवर द्वारा कमाई सारी संपत्ति आपको समर्पित करती हूं। पर देवी ने वह धन स्वीकार नहीं किया व उसे समझाया—यह संपत्ति यदि तू अपने पास नहीं रखना चाहती तो उसे दान-धर्म में खर्च कर दे। इससे धन का सदुपयोग होगा व तेरे वंश का नाम भी चलेगा।

तापीदास की पत्नी ने बात मान ली। उसने खरगोन में कुंदा नदी के किनारे एक

घाट व गणेशजी का मंदिर बनवाया। ये दोनों आज भी खरगोन में हैं। जान मालकम ने यह घटना अपनी पुस्तक में लिखी है।

देवी के आचरण का प्रभाव चोर-डाकुओं पर भी हुआ था। ये भी देवी के प्रति असाधारण श्रद्धा रखते थे। देवी द्वारा चलाए गए कई अन्नसत्र घने वनों में थे पर चोर-डाकुओं ने वहां कभी भी डाका नहीं डाला। वहां चोरी करना वे बड़ा पाप समझते थे। उनकी धारणा बन गई थी कि वहां चोरी करने से देवी अहिल्याबाई का श्राप उन्हें लगेगा और वे नष्ट हो जायेंगे।

आज से दो-ढाई सौ वर्ष पहले अहिल्याबाई ने दान-धर्म व निर्माण कार्यों में करोड़ों रुपए खर्च किए थे। अपने इस अपार दान-धर्म के विषय में वे कहा करती थीं—"मेरा यह सब कुछ नहीं है। जिसका है, उसी के पास भेजती हूं। जो कुछ लेती हूं वह मेरे ऊपर ऋण है। न जाने कैसे चुका पाऊंगी!"

21

निर्माण कार्य

भारत में जैसे तीर्थस्थानों की संख्या भी अगणित है, वैसे ही देवी अहिल्याबाई द्वारा निर्मित स्थानों की संख्या भी अगणित है। तीर्थस्थान देश भर में हैं। देवी द्वारा निर्मित स्थान भी प्राय: प्रत्येक तीर्थस्थान में हैं। उत्तर में पर्वतराज हिमालय के अगम-दुर्गम हिमाच्छादित शिखरों से लेकर सागर के छोरों तक फैले तीर्थस्थानों में देवी द्वारा निर्मित कोई स्थान अवश्य मिलता ही है। मंदिर, धर्मशाला, घाट, कुंड, बावड़ी, पूजा-व्यवस्था आदि वहां देवी की महानता व धार्मिकता का दर्शन कराते हुए मिल ही जायेंगे।

देवी ने कितने मंदिर, घाट, धर्मशालायें, कुएं आदि बनवाये, कहां कितना दान-धर्म किया और उनमें कितना धन खर्च हुआ इसका पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है। कुछ हिसाब-किताब अवश्य मिलता है। ये सारे निर्माण कार्य अत्यंत सुंदर, भव्य व सुदृढ़ हैं। भारत की वास्तुकला के वे श्रेष्ठ उदाहरण हैं। कई मंदिरों में स्थापित मूर्तियां भी बहुत ही कलापूर्ण हैं।

मंदिरों में पूजा-अर्चना की भी उन्होंने श्रेष्ठ व्यवस्था की थी। पूजा-पाठ, धर्म ग्रंथों के पठन-पाठन व अन्य धार्मिक कार्यों के लिए उच्चकोटि के धर्मज्ञों व विद्वानों की उन्होंने नियुक्ति की थी। वे विद्वान देश के हर भाग से सादर आमंत्रित किये गये थे। उनकी स्थाई व्यवस्था देवी ने की थी। देवी ने अपने द्वारा निर्मित व अन्य मंदिरों के लिए भूमि व नेमणुक (वार्षिक धनराशि) की व्यवस्था की थी।,उन्होंने भूमि खरीदकर मंदिरों को दान कर दी थी। व्यवस्था यह थी कि उस भूमि के स्वामी भगवान थे व भूमि को संभालने वाला पुजारी था। देवी के बाद पुजारियों की नियुक्ति होलकर राज्य द्वारा की जाती थी। नेमणुक भी राज्य देता था। अब ये दोनों कार्य इंदौर स्थित खासगी ट्रस्ट द्वारा किये जाते हैं।

इन निर्माण कार्यों को करते समय देवी ने किसी क्षेत्र विशेष को नहीं बल्कि पूरे भारत को अपने सामने रखा था। देवी स्वयं भगवान शिव की उपासिका थीं। अत: शिव मंदिरों का निर्माण उन्होंने अवश्य अधिक कराया था। पर विभिन्न मतावलंबियों के तीर्थस्थानों में उन्होंने देवी-देवताओं के मंदिर भी बनवाये थे। भारत के विभिन्न क्षेत्रों

की शिल्प कला के अनूठे दर्शन इन मंदिरों में होते हैं । देश भर के शिल्पियों, मूर्तिकारों, कलाकारों आदि का इन कार्यों में उन्होंने सहयोग लिया था । समाप्त हो रही इस कला को उन्होंने नवजीवन व प्रोत्साहन दिया था । इससे शिल्पियों, कलाकारों व मजदूरों की विशाल संख्या को भी अपूर्व लाभ व प्रोत्साहन मिला था ।

मुसलमान शासकों ने अगणित मंदिरों व मूर्तियों को नष्ट कर दिया था । देश के हिंदू नरेश व प्रमुख लोग तब आपसी कलह में इतने लिप्त थे कि उन्हें इस महानाश की ओर देखने की न दृष्टि थी न ही अवकाश । ऐसे भीषण समय में मंदिरों का निर्माण कर व धार्मिक कार्यों को प्रोत्साहन देकर उन्होंने एक महान क्रांतिकारी व परम धार्मिक कार्य किया था । उन्होंने अपने मौन आचरण से नव निर्माण, धर्म व सच्ची शांति का अमूल्य संदेश देशवासियों को दिया था । देवी द्वारा निर्मित मंदिर सच्चे अर्थों में धर्म स्थान थे । इन मंदिरों ने भारत में धार्मिकता के प्रसार व पुनर्निर्माण में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया था ।

उन दिनों यातायात के साधन अत्यंत सीमित थे । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में समय बहुत अधिक लगता था । खतरे भी कम नहीं थे । सामग्रियों को लाना-ले जाना और भी कठिन था । इन समस्त कठिनाइयों के होते हुए भी उस शांत समय में विभिन्न राज्यों में अहिल्याबाई द्वारा किये गये कार्य अलौकिक, अतुलनीय व परम आश्चर्यजनक थे ।

निर्माण कार्य वे परखे हुए लोगों को सौंपती थीं, और काम व हिसाब पर पूरा ध्यान रखती थीं । फिजूलखर्ची, लापरवाही व भ्रष्टाचार उन्हें जरा भी पसंद नहीं था । ऐसे लोगों को वे तुरंत काम पर से हटा देती थीं ।

नासिक में चल रहे एक निर्माण कार्य से संबंधित व्यक्ति ने थोड़ा धन दबा लिया व काम में देरी की । अपने गुप्तचरों से यह जानकारी मिलते ही देवी ने उसे तुरन्त काम पर से हटा दिया । पंढरपुर में बने श्रीराम मंदिर का पैसा उन्होंने तभी चुकाया जब उन्हें विश्वास हो गया कि काम पक्का हुआ है । वे स्वयं पंढरपुर गयीं व उक्त मंदिर की छत पर अपने सामने एक हाथी को चलवाया । इस प्रकार छत की मजबूती की परीक्षा लेने के बाद ही उन्होंने पैसा चुकाने की आज्ञा दी ।

पंढरपुर दक्षिण का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है । वहां बड़ी संख्या में श्रद्धालुजन जाते हैं । उनकी सुविधा के लिए उन्होंने पंढरपुर के आसपास जंगल में कई बावड़ियां खुदवाई थीं व वहीं खेती की जमीन खरीदकर लोगों को वंश परंपरा के लिए दे दी थीं । उस मार्ग से पंढरपुर आने-जाने वाले यात्रियों को झुनका-भाकर (कादे का बेसन और ज्वार या बाजरे की रोटी) खिलाने और पानी पिलाने का काम उन्हें सौंपा गया था । अभी भी उस मार्ग पर कुछ लोग इस व्रत का पालन कर रहे हैं । देश के कुछ स्थानों पर अहिल्याबाई ने लोगों को जमीन व गाय-भैंसें खरीद कर दी थीं । उधर से आने-जाने वाले यात्रियों

को दूध पिलाने का काम देवी ने उन्हें सौंपा था। उन लोगों के वंशज बड़े गौरव से कहते हैं कि अहिल्या मां साहेब ने हमें यह काम दिया था और वह जमीन उन्होंने ही हमारे पूर्वजों को दी थी।

ओंकारेश्वर व अन्य तीर्थों व जंगलों में कई कुएं-बावड़ियां उन्होंने यात्रियों की सुविधा के लिए बनवाई थीं जो आज भी काम दे रही हैं। ये सारी बावड़ियां पक्की बनी हैं व बहुत कलापूर्ण हैं। बंगाल में कर्मनाशिनी नदी पर पुल भी बनवाया था।

काशी, मथुरा, जेजूरी, पंढरपुर, ओंकारेश्वर, आदि तीर्थस्थानों की यात्रा अहिल्याबाई ने की थी। उन्होंने तीर्थों के प्रति श्रद्धा को जाग्रत किया। देश की चारों सीमाओं पर स्थित चारों धामों, देश भर में फैले बारह ज्योतिर्लिंगों, सात नगरियों, अन्य तीर्थ स्थानों व पवित्र नदियों का भारत में बड़ा महत्व है। इन सारे तीर्थों व नदियों के किनारे और विशेष कर नर्मदा नदी के किनारे पर उन्होंने कई मंदिर, घाट आदि बनवाए थे। उन स्थानों की एक अपूर्ण सूची निम्नानुसार है –

श्री बद्रीनारायण	–	श्री केदारेश्वर मंदिर व श्री हरि मंदिर, अनेक कुंड व धर्मशालाएं बनवाईं, देव प्रयाग में बाग व गरम पानी का कुंड भी बनवाया।
श्री द्वारका	–	पूजा घर बनवाया।
श्री रामेश्वर	–	श्री राधाकृष्ण मंदिर, धर्मशाला व कुएं बनवाए।
श्री जगन्नाथ पुरी	–	श्री रामचन्द्र मंदिर, धर्मशाला व बाग बनवाया।
सौराष्ट्र	–	सन 1785 में सोमनाथ महादेव मंदिर का जीर्णोद्धार कराया व मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की।
श्री शैल मल्लिकार्जुन	–	एक मंदिर बनवाया।
ओंकारेश्वर	--	श्री ममलेश्वर व त्रयम्बकेश्वर के मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया, गौरी सोमनाथ के अधूरे मंदिर को पूर्ण किया, धर्मशाला, तालाब, छत्री व शिवजी का चांदी का मुखौटा बनाया।
परली बैजनाथ	–	सन 1784 में मंदिर का जीर्णोद्धार कराया।
काशी	–	काशी विश्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, श्री तारकेश्वर, श्री गंगाजी सहित नौ मंदिर बनवाये, मणिकर्णिका घाट व दशाश्वमेघ घाट बनवाए, अनेक धर्मशालाएं, भवन व फूलों के बाग बनवाये।
त्रयम्बकेश्वर	–	कुशावर्त घाट पर पुल बनवाया।
घ्रष्णेश्वर	–	शिवालय तीर्थ का निर्माण किया।

अयोध्या	—	श्री राम मंदिर, श्री चेताराम मंदिर, श्री भैरव मंदिर, श्री नागेश्वर मंदिर, अन्य मंदिर, सरयू घाट व धर्मशालाएं बनवाईं।
मथुरा	—	मंदिर, कालियादह व अन्य घाट व धर्मशाला बनवाई।
हरिद्वार	—	घाट व दो विशाल धर्मशालाए बनवाईं।
अवन्तिका (उज्जैन)	—	श्री चिन्तामन गणपतिजी, जनार्दन मंदिर, श्री लीला पुरुषोत्तम बालाजी मंदिर, घाट, कुंड, बावड़ियां व धर्मशाला बनवाईं।
चित्रकूट	—	श्री रामचंद्रजी की व अन्य चार मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा की।
पुष्कर	—	गणपति मंदिर, धर्मशाला व फूलों का बाग बनवाया।
एलोरा	—	एक मंदिर बनवाया।
भुसावल	—	एक मंदिर बनवाया।
पुणताम्बे	—	गोदावरी नदी पर घाट बनवाया।
भरतपुर	—	मंदिर, धर्मशाला, कुंड व घाट बनवाया।
नाथद्वारा (राजस्थान)	—	मंदिर, धर्मशाला, कुआं व कुंड बनवाया।
टेहरी (बुंदेलखंड)	—	धर्मशाला बनवाई।
बुरहानपुर (म.प्र.)	—	घाट बनवाया।
बेरुल (कर्नाटक)	—	गणपति, पांडुरंग, जालेश्वर, खंडोबा, तीर्थराज, व अग्नि के मंदिर बनवाए।
कुरुक्षेत्र (उत्तर प्रदेश)	—	दो शिव मंदिर व दो घाट बनवाए।
नेमिशारण्य (उ.प्र.)	—	श्री महादेव मढ़ी, धर्मशाला, घाट व कुंड बनवाए।
संवलग्राम (उ.प्र.)	—	श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर बनवाया।
प्रयाग (उत्तर प्रदेश)	—	श्री विष्णु मंदिर, धर्मशाला, फूलों का बाग, घाट व सरकारी बाड़ा बनवाया।
अमरकंटक (मध्य प्रदेश)	—	श्री विश्वेश्वर मंदिर, कोटि तीर्थ, गोमुखी, धर्मशाला व कुंड बनवाया।
पंढरपुर (महाराष्ट्र)	—	श्री राम मंदिर, तुलसी बाग, सरकारी बाड़ा, सभा मंडप व धर्मशाला बनवाई।
चौंडी (महाराष्ट्र)	—	अहिल्याबाई के जन्म स्थान में श्री अहिल्येश्वर मंदिर व घाट बनवाए।

जेजूरी (महाराष्ट्र)	—	मल्हार गौतमेश्वर मंदिर, विठ्ठल मंदिर व एक तालाब बनवाया।
सप्तशृंग (महाराष्ट्र)	—	एक धर्मशाला बनवाई।
संगमनेर (महाराष्ट्र)	—	श्री राम मंदिर बनवाया।
कुंभेर (राजस्थान)	—	खाण्डेराव होलकर की छत्री बनवाई।
पूना (महाराष्ट्र)	—	तुकोजीराव होलकर प्रथम व राजकुमार मल्हारराव की छत्रियां खड़की में बनवाईं
खावदांख (महाराष्ट्र)	—	होलकर बाड़ा व एक कुआं बनवाया।
सुलतानपुर (महाराष्ट्र)	—	एक मंदिर बनवाया।
नासिक (महाराष्ट्र)	—	श्री राम मंदिर, गोरा महादेव मंदिर व एक धर्मशाला बनवाई।
गिरि (महाराष्ट्र)	—	भैरव मंदिर बनवाया।
बीड (हैदराबाद)	—	घाट का जीर्णोद्धार किया।
आलमपुर	—	श्वसुर मल्हारराव के निधन स्थान पर श्री हरिहरेश्वर मंदिर, उनकी स्मृति में विशाल छत्री व उनके सामने खण्डेराव मार्तण्ड का मंदिर बनवाया।
आनंद कानन	—	श्री विश्वेश्वर मंदिर का निर्माण कराया।
इंदौर	—	छत्रियां, मंदिर व घाट बनवाए।
ऋषिकेश	—	कुछ मंदिर बनवाए।
केदारनाथ	—	धर्मशाला व कुंड बनवाए।
गंगोत्री	—	श्री विश्वनाथ, केदारनाथ, अन्नपूर्णा व भैरव के चार मंदिर, छह धर्मशालाएं व पहाड़ पर यात्रियों के लिए कई धर्मशालाएं बनवाईं।
गया	—	श्री विष्णुपद मंदिर व सभा मंडप का निर्माण कराया।
चांगदेव	—	एक मंदिर बनवाया।
छोंदी	—	एक मंदिर बनवाया।
तराना (मध्य प्रदेश)	—	श्री तिलाभांडेश्वर शिव मंदिर बनवाया।
त्रयम्बकेश्वर (महाराष्ट्र)	—	दो मंदिर व एक तालाब बनवाया।
नैमावर (मध्यप्रदेश)	—	एक सुंदर मंदिर बनवाया।
नीलकंठ महादेव	—	शिवालय व गोमुख बनवाया।
पुष्कर	—	श्री विष्णु मंदिर, एक बड़ा घाट, धर्मशाला, फूलों का

		बाग व सरकारी बाड़ा बनवाया ।
विठूर	–	घाट बनवाया ।
बीड़	–	पुराने घाट का जीर्णोद्धार किया ।
बुरहानपुर	–	घाट बनवाया ।
भरतपुर	–	मंदिर, धर्मशाला, कुंड व कुआं बनवाया ।
मंडलेश्वर	–	शिव मंदिर व घाट बनवाया ।
महेश्वर	–	कई मंदिर, घाट, छत्रियां, धर्मशालाएं मकान आदि बनवाए । कई मंदिरों व किले का जीर्णोद्धार कराया ।
संगमनेर	–	श्री राम मंदिर बनवाया ।
सिंहपुर	–	शिव मंदिर व धर्मशाला बनवाई ।
नेमावर	–	श्री सिद्धनाथ का सुंदर मंदिर व धर्मशाला बनवाई । नर्मदा पर एक बड़ा घाट बनवाया ।

अहिल्याबाई द्वारा किए निर्माण कार्यों का उद्देश्य वैभव व सत्ता का प्रदर्शन करना नहीं बल्कि लोकहित था । उस युग में आवागमन के साधनों का व तीर्थस्थानों में निवास के स्थानों का बड़ा अभाव था । इस दृष्टि से अहिल्याबाई ने देश में कई मार्गों, पुलों, जलाशयों व धर्मशालाओं आदि का निर्माण कराकर एक बड़ी सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति की थी । इन निर्माण कार्यों में अहिल्याबाई की मानवीय भावनाओं व राष्ट्रीय व्यक्तित्व के स्पष्ट दर्शन होते हैं ।

22

विविध

पूना के पेशवा शासन के आधीन होलकर राज्य था । पेशवा सरकार को सब बातों में पूर्ण प्रमुखता व महत्व प्रदान कर अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखने में अहिल्याबाई ने अपूर्व नीतिज्ञता व असाधारण योग्यता प्रकट की थी । उनके शासन काल में पूना व महेश्वर में कभी भी कोई मनोमालिन्य नहीं हुआ । दोनों स्थानों के शासकों में एक-दूसरे के प्रति पूर्ण स्नेह, आदर व विश्वास सदा बना रहा । अहिल्याबाई पेशवा को बहुत मानती थीं व उन्होंने उनकी इच्छा के विरुद्ध कभी भी कोई काम नहीं किया । पेशवा की समस्त योजनाओं को उन्होंने सदैव पूर्ण रूप से सहयोग दिया था । आवश्यकतानुसार धन व सेना की भरपूर सहायता वे पेशवा को देती थीं । उन्होंने पूना के आदेशों को सदा प्राथमिकता व महत्व दिया था । तुकोजीराव को उन्होंने स्थाई आदेश दे रखा था कि वे पहले पेशवा का काम करें, फिर उनका । पेशवा के महेश्वर स्थित वकील हिंगणे ने नाना फड़नवीस को एक पत्र में लिखा था – 'अहिल्याबाई का पुण्य, बुद्धि व धर्म इस संस्थान को चिरस्थाई बनाने वाला है । उसमें पेशवा के प्रति पूर्ण निष्ठा, विश्वास, सत्कीर्ति, कर्तव्य व पुरुषार्थ निहित हैं ।'

शासकीय व अन्य मामलों में प्रसंगानुसार पेशवा, नाना फड़नवीस व अन्य अधिकारी व्यक्तियों की राय वे अवश्य लेती थीं । अपने राज्य में भी उन्होंने मनुष्यों को परखकर उन्हें महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया था । इन व्यक्तियों से व राज्य के प्रमुख व सुयोग्य नागरिकों से भी वे महत्व के मामलों पर चर्चा करती थीं । सबके विचार शांति से सुनकर उन्हें जो उचित लगता, वही वे करती थीं । हर मामले में अंतिम निर्णय उनका ही रहता था । पेशवा का या अन्य किसी भी व्यक्ति का अनधिकार दबाव उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया । पूना में कुछ लोग अहिल्याबाई के विरोधी भी थे । मौका पाकर वे अहिल्याबाई का विरोध करते व षड्यंत्र रचते रहते थे । इन सारी बातों की पूरी जानकारी अहिल्याबाई को मिल जाती थी । पर पूना में उनका प्रभाव इतना अधिक था कि वे षड्यंत्रकारी कुछ भी कर नहीं पाते थे ।

माधवराव पेशवा का देवी पर पूर्ण विश्वास व बड़ी श्रद्धा थी । अपने पत्रों में वह उन्हें बड़े आदर से संबोधित करता था और देवी जब पूना जाती थीं तो बड़ी आदर श्रद्धा

से उनका वहां स्वागत सम्मान होता था। अनेक राजनैतिक व महत्वपूर्ण मामलों में पेशवा सदा देवी की सलाह लेता था। उनके विरुद्ध जाने की कल्पना भी माधवराव पेशवा ने कभी नहीं की। अनेक अवसरों पर पूना से उच्च अधिकारी महेश्वर आते थे और देवी के पवित्र जीवन, श्रेष्ठ व्यवहार व सुशासन से प्रभावित होकर लौटते थे। पेशवा के महेश्वर दरबार में नियुक्त दो वकील विट्ठल शामराज व केसो मिकाजी महेश्वर की राजनीतिक गतिविधियां व देवी की संपूर्ण जानकारी पूना भेजते थे। इन वकीलों ने देवी की सदा प्रशंसा ही लिखी थी।

तत्कालीन भारत के अनेक नरेश, जागीरदार, जमींदार व अधिकारीगण आदि देवी के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। सीतामऊ, देवास, बड़वानी झाबुआ व अन्य कई राज्यों के शासक उनकी सलाह लेते थे। देवी का मन जैसे पवित्र था, वैसे ही उनका आचरण भी अच्छा व साफ-सुथरा था। इसी कारण सारे राजा व लोग उन्हें अपना शुभचिंतक मानते थे। उनकी राजनीतिक पवित्रता का ही यह परिणाम था कि उन दिनों में भी किसी भी राज्य ने होलकर राज्य पर एक बार भी आक्रमण नहीं किया। यहां तक कि उदयपुर के नरेश, टीपू व निजाम भी देवी के विरुद्ध कभी नहीं हुए।

पड़ोसी राज्यों के साथ शांति, न्याय, समता व मैत्री का व्यवहार उनकी विदेश नीति के प्राथमिक सिद्धांत थे। पड़ोसी राज्यों में प्रशासकीय कठिनाई या कोई समस्या उत्पन्न हो जाती तो उसे हल करने के लिए वे सदा तत्पर रहती थीं।

महादजी सिंधिया उस युग का बड़ा प्रभावी शक्तिशाली कूटनीतिज्ञ था। वह बड़ा वीर व श्रेष्ठ सेनापति था। उत्तर भारत में मराठा साम्राज्य का वह प्रमुख स्तंभ था व पेशवा ने ग्वालियर की जागीर उसे दी थी। होलकर व मराठा राज्यों पर उत्तर भारत से आने वाले राजनीतिक संकटों को वह सफलतापूर्वक समाप्त करता रहा। पेशवा, अहिल्याबाई व मुगल सम्राट उसे बड़ा आदर देते थे। अहिल्याबाई ने उसे कई बार बड़ी चतुराई से कूटनीतिक मातें दी थीं। इतने पर भी महाप्रतापी महादजी देवी को बहुत सम्मान देता था और उन्हें मां कहकर संबोधित करता था।

देवी व तत्कालीन होलकर राज्य की तब भारत में कितनी प्रतिष्ठा थी, यह इससे भी स्पष्ट है कि पूना, ग्वालियर, मारवाड़, भरतपुर, जयपुर, जोधपुर व अन्य कई राज्यों के वकील महेश्वर में स्थाई रूप से रहते थे। इन सबने देवी की रीति-नीतियों की सदैव प्रशंसा ही की। पूना, उदयपुर, जयपुर, हैदराबाद, अयोध्या, ग्वालियर, नागपुर, लखनऊ, भोपाल, कोटा , दिल्ली, श्रीरंगपट्टनम, कलकत्ता, डोंगरपुर, प्रतापगढ़ आदि राज्यों में होलकर राज्य के वकील नियुक्त थे। योग्य व चतुर व्यक्तियों को देवी ने इन महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया था।

प्राचीन परंपरा के अनुसार अतिथियों का स्वागत-सत्कार देवी बड़ी आत्मीयता से करती थीं। अनेक प्रमुख राजनीतिज्ञ, सरदार, जागीरदार, विद्वान, ब्राह्मण, तीर्थयात्री,

साधु-संत आदि महेश्वर आते ही रहते थे । पूर्ण सम्मान के साथ देवी उनके निवास, भोजन आदि की व्यवस्था करती थीं । कई बार वे स्वयं अतिथियों की व्यवस्था की देख-रेख करती थीं । तब महेश्वर में आने वाले सारे अतिथियों व नगर के नागरिकों के घर आने वाले मेहमानों को भी देवी बड़े स्नेह से आमंत्रित करती थीं ।

अहिल्याबाई के समय में डाक-व्यवस्था सुव्यवस्थित थी । पत्रवाहक कासिद कहलाते थे और उन्हें दस दस कोस के अंतर पर बनी चौकियों तक पैदल चलकर पत्र पहुंचाने पड़ते थे । महेश्वर से पूना तक व देश के प्रमुख नगरों तक इस प्रकार डाक व सामान भेजने की व्यवस्था थी । इस डाक-व्यवस्था के कारण देवी का पेशवा से और देश से संपर्क रहता था । शांतिकाल की इस डाक-व्यवस्था में युद्ध के समय पर्याप्त परिवर्तन कर और सक्रिय कर दिया जाता ।

होलकर राजवंश के सिक्कों का क्रमबद्ध इतिहास देवी के शासनकाल के प्रथम वर्ष सन 1767 से ही शुरू होता है । अहिल्याबाई ने चांदी व तांबे के सिक्के ढलवाए थे । चांदी के सिक्के एक आना, दो आना, चार आना, आठ आना व एक रुपया मूल्यमान के थे । तांबे के सिक्के एक धेला, एक पैसा व आधा आना के थे । ये सिक्के होलकर राज्य के महेश्वर व मल्हारगढ़ की टकसालों में ढाले जाते थे । महेश्वर में ढाले जाने वाले सुंदर सिक्के चांदी के थे व उन पर शिवलिंग, जलाधारी और बिल्व पत्र अंकित रहता था । एक मान्यता के अनुसार ये सिक्के दान-पुण्य व धार्मिक कार्यों के काम आते थे ।

अहिल्याबाई की प्रशासकीय व कूटनीतिक गतिविधियों का उपयुक्त मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक है कि तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थितियों के साथ साथ देवी के राज्य की सीमाएं और उनके राज्य का महत्व मराठा राजनीति की दृष्टि से जानें । अहिल्याबाई की राजधानी महेश्वर थी व उत्तर में रामपुरा-भानपुरा तक व दक्षिण में चांदवड तक उनका राज्य फैला था । विभिन्न भूखंडों में स्थित होने के कारण उसमें भौगोलिक एकता का अभाव था । मालवा, राजपूताना, निमाड़ व दक्षिण के पठार में कुल मिलाकर अहिल्याबाई का राज्य 126 परगनों में फैला हुआ था । इसके उत्तर में उदयपुर व कोटा राज्यों की सीमाएं लगी थीं, उत्तर पूर्व में झालावाड़ की, पूर्व में ग्वालियर, देवास, धार व भोपाल की, दक्षिण में ग्वालियर, धार, बड़वानी, निजाम व पेशवा के राज्यों की और पश्चिम में बड़वानी व डूंगरपुर राज्यों की सीमाएं थीं । इस होलकर राज्य की वार्षिक आमदनी सूबेदार मल्हारराव होलकर के समय 75 लाख रुपए थी जो अहिल्याबाई के शासन के अंतिम वर्षों में सवा करोड़ रुपए तक पहुंच गई थी ।

तब विदेशियों के व विशेषकर अंग्रेजों के भारत में बढ़ रहे साम्राज्यवादी कदमों के प्रति भी वे बहुत चिंतित थीं और विदेशों के इस बढ़ते प्रभाव को सर्वथा अनुचित मानकर उस संकट को समाप्त कर देना चाहती थीं । एक पत्र में उन्होंने बहुत स्पष्ट लिखा

था–'अंग्रेजों ने चारों ओर से प्रसार करने की योजना बनाई है। कहीं दो तो कहीं तीन पलटनें खड़ी कर अंग्रेज सिर उठा रहे हैं। ऐसे समय में उन स्थानों पर फौज भेजकर उन्हें जहां के तहां समाप्त कर देना चाहिए ताकि उन्हें दहशत पड़ जाए और फिर आगे कोई पैर नहीं बढ़ा सके। नवाब भोंसले आदि सबको मिलकर अंग्रेजों को हराना चाहिए।...'

23

कवियों, लेखकों व राजनीतिज्ञों की दृष्टि में अहिल्याबाई

अहिल्याबाई के प्रति समस्त देशवासियों की अपूर्व श्रद्धा रही है । सब उन्हें अपनी स्नेहमयी माता और अलौकिक गुणों व शक्ति से संपन्न देवी के समान मानते थे । उनके जीवन काल में ही कई कवियों, लेखकों, राजनीतिज्ञों आदि ने उनका गुण-गौरव बड़े भावपूर्ण शब्दों में किया था । तब से अभी तक उनके गुणगान की पावन धारा सतत प्रवाहित हो रही है और भविष्य में और अधिक गति से प्रवाहित होगी । यहां कुछ प्रसिद्ध कवियों, लेखकों, राजनीतिज्ञों व इतिहासकारों द्वारा अहिल्याबाई के विषय में लिखित सामग्री में से कुछ अंश संकलित हैं ।

संस्कृत में सुप्रसिद्ध कवि व विद्वान खुशालीराम ने अहिल्या कामधेनु नामक एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ लिखा है । ग्रंथ संस्कृत में है । उसने अहिल्याबाई का चरित्र व महत्व बड़ी अच्छी तरह से लिखा है । वह लिखता है —

नित्यं सा ददादि दानं देव ब्राह्मण पूजकान् ।
कालं व्यत्येति सा सम्यग् धर्ममार्गपरायणा ॥

वे सदा देव, ब्राह्मण और पुजारियों को दान देती थीं तथा धर्म कार्यों में अपना समय बिताती थीं ।

कुरुक्षेत्र तीर्थे तुलादानमेवं ।
सुवर्णात्मरोप्यादिकं बारबारं ॥
अहिल्याऽपिसा संददो दानशीला ।
धरा देवताभ्यो गुणज्ञानशीला ॥

उन्होंने कुरुक्षेत्र में कई बार स्वर्ण और चांदी का तुला दान भी किया । गुण, ज्ञान और शील संपन्न दानशीला अहिल्याबाई ने ब्राह्मणों को भी बहुत दान दिया ।

एक स्थान पर खुशालीराम ने लिखा—अहिल्याबाई ने देश देश में अनेक प्रकार के अन्नदान किए । याचकों की याचना पूर्ण की और जो कोई शरण में आया, उसकी

इच्छा पूरी की ।

मोरोपन्त मराठी में माने हुए कवि व भक्त थे । वे बिना किसी लाग-लपेट के सीधी बात कहने वाले तेजस्वी व्यक्ति थे । अहिल्याबाई के गुणों की उन पर अमिट छाप पड़ी थी । एक बार वे गंगा स्नान करने गए तो उनके हृदय के ये उद्‌गार सहज ही निकल पड़े –

देवी ! अहिल्याबाई यावी भेटावयास सत्वर ती ।
तू पुण्य कीर्ति है ही गंगे दोधीजणी ही सत्वर ती ॥

अर्थात हे गंगे, मैं अहिल्याबाई के दर्शन करूंगा । जैसे तुम संसार में प्रसिद्ध हो, उसी तरह वे भी प्रसिद्ध हैं । तुम दोनों से संसार का उपकार होता है ।

उत्तर भारत में कवि मोरोपन्त अनेक तीर्थस्थानों में गए। सब स्थानों पर उन्हें अहिल्याबाई द्वारा निर्मित मंदिर, धर्मशालाएं, कुएं, बावड़ियां आदि व अनेक स्थानों पर अन्नसत्र व दान-धर्म के कार्य विधिवत चलते दिखाई दिए । यह देख मोरोपन्त की देवी के प्रति श्रद्धा-भक्ति बढ़ती ही गई। फिर वे उनके दर्शन करने महेश्वर गए। वहां अहिल्याबाई के प्रत्यक्ष दर्शन कर वे भाव-विभोर हो गए । देवी ने भी उनका बड़ा आदर किया । मोरोपन्त ने उनकी स्तुति मराठी भाषा में इस प्रकार की –

श्रीहरिहरभक्ता तू देवि अहल्ये वरा धरा भूषा ।
पूषा तुज साधु म्हणे ख्याता तुज सम न वाणतनुभूषा ॥1 ॥

देवी अहिल्याबाई ! झालीस जगत्त्रयात तू धन्या ।
न न्याय-धर्म-निरता अन्या कलिमाजि ऐकिली कन्या ॥2 ॥

धर्मार्थ गोत्रजन्या किंवा झालीस तूं धरा जन्या ।
तुज देवी भेटली जी सत्कीर्ति कधींच हे न राजन्या ॥3 ॥

जाणत धर्म करीना त्या स्तवियों कोण पंडित मन्या ।
न न्याय धर्म निरता अन्या माजी ऐकिली कन्या ॥4 ॥

न त्यजिसि नर्मदेत देवि ! तुझी ती बहु प्रिया आली ।
गंगेचीहि सुखी हो की उभय मनांत सतक्रिया आली ॥5 ॥

श्री विष्णुपदा ! स्तविली त्वद्‌भक्ता हें तुलाहि मानावें ।
विश्व जिला वानितसे कां न मयूरेहि तीस बानावें ॥6 ॥

अर्थ है –

हे देवी अहिल्या । तुम हरि-हर की परम भक्त हो । अपनी भक्ति के कारण तुम इस पृथ्वी का श्रेष्ठ आभूषण बन गई हो । सूर्य भी तुम्हारी प्रशंसा करता है । बाण की पुत्री भी तुम्हारे समान प्रसिद्ध नहीं है ।1 ।

हे महा माननीय देवी ! तुम तीनों लोकों में धन्य हो । कलियुग में तुम्हारे समान न्यायी और धर्मपरायणा नारी दूसरी नहीं हुई ।2 ।

धर्मकार्य करने के लिए ही तुम जन्मी हो । तुम संभवत: पार्वती या सीता का अवतार हो । किसी भी राजा की तुम्हारे जैसी सत्कीर्ति नहीं हुई ।3 ।

पंडितों द्वारा प्रशंसित मनुष्यों में ऐसा कौन है जो धार्मिक कार्य नहीं करता ? हे देवी तुम्हारे समान न्याय और धर्म में रत कोई और महिला सुनाई नहीं देती ।4 ।

तुम नर्मदा से कभी दूर नहीं होती क्योंकि वे तुम्हें बहुत प्रिय है । तुम दोनों पवित्र गंगा की सखी हो क्योंकि सत्कार्य करने की इच्छा तुम दोनों के मन में सदा रहती है ।5 ।

हे विष्णुपद ! अहिल्याबाई तुम्हारी एक परम भक्त महिला है । तुम्हें यह सुनकर बड़ी प्रसन्ता होगी कि सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और जब सारा विश्व उनकी स्तुति कर रहा है तो यह मयूर (मोरोपन्त) उनका गुणानुवाद क्यों न करे ? ।6 ।

मराठी के सुप्रसिद्ध कवि प्रभाकर व गायक अनन्तफन्दी ने भी उनके विषय में बड़ी श्रद्धा भक्ति से पूर्ण काव्यांजलि अर्पित की है । तत्कालीन सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस अहिल्याबाई की प्रतिभा व अलौकिक गुणों से परिचित थे । उन्होंने एक अवसर पर कहा था कि अहिल्याबाई पुरुषार्थ, दूरदर्शिता व महानता में अद्वितीय हैं । कोई भी इन बातों में उनकी बराबरी नहीं कर सकता ।

दिल्ली दरबार में मरहठा राजदूत हिंगणे ने नाना फड़नवीस को एक पत्र में लिखा था । अपने राज्य की सेना तथा सुरक्षा करने के लिए आवश्यक समस्त सद्‌गुण अहिल्याबाई में हैं । शासन प्रबंध करने की योग्यता उनमें जन्मजात है । उनके द्वारा प्रजा की भौतिक व परलौकिक प्रगति बहुत अच्छी तरह से हो रही है ।

स्काटलैंड की कुमारी जोना बेली नाम की एक सुप्रसिद्ध कवियित्री अहिल्याबाई के समय में जीवित थी । इस महिला ने देवी की प्रशंसा में एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है । पुस्तक में वर्णित लंबी कविता में उनकी महानता व गुणों का बड़ा सुंदर वर्णन है । एक स्थान पर लिखा है, अहिल्याबाई ने तीस वर्ष तक शांति पूर्वक राज्य किया । उनके समय में राज्य का ऐश्वर्य बढ़ता ही गया । सभ्य और असभ्य, बूढ़े और जवान सब उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे ।[1] इससे यह स्पष्ट है कि अहिल्याबाई की कीर्ति भारत की सीमाओं को लांघकर विदेशों तक पहुंच गई थी ।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार तथा मध्य भारत के पोलिटिकल एजेंट सर जान मालकम ने अहिल्याबाई के संबंध में पर्याप्त प्रमाणित तथ्य लिखे हैं । देवी की मृत्यु के कुछ वर्ष

---

1. For thirty years her reign of peace
 The land in blessings did increase,
 And she was blessed by every tongue
 By stern and gentle, old and young.

बाद वह मालवा में आया था। देवी की कीर्ति सुनकर महेश्वर में भारमल व अन्य लोगों से वह मिला था। वह लिखता है — 'उनका रहन-सहन अत्यंत सरल, सादा और चरित्र अत्यंत महान था। सच्चे वैधव्य का हिंदू आदर्श जैसा उन्होंने निभाया था, वैसा बहुत कम विधवाएं कर सकी हैं। एक महारानी के लिए तो यह और भी सराहनीय है।...वे सदैव श्वेत साड़ी पहनती थीं। रंगीन, बेलबूटेदार कपड़ा वे कभी नहीं पहनती थीं।...'

एक और स्थान पर मालकम ने लिखा है—'अहिल्याबाई का चरित्र विमल और शासन अत्यंत प्रशंसनीय था। उनका जीवन इस बात को स्पष्ट करता है कि भगवान के प्रति भक्ति रखकर कर्तव्यपरायण होने से मनुष्य को कितना व्यावहारिक लाभ होता है।'

मालकम के ये शब्द भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। वह लिखता है—'अहिल्याबाई एक असाधारण महिला हैं। उनमें दुरभिमान की गंध नहीं है। वे धर्मपरायण होते हुए भी सहन करने की शक्ति से पूर्ण हैं। उनका मन रूढ़ियों से प्रभावित है पर उनका उपयोग जनता की भलाई के लिए ही होता है। वे एक ऐसी आत्मा हैं जो प्रतिक्षण विवेक से काम करती हैं। सुख-सुविधा से संपन्न होते हुए भी वे निष्कपट, विनम्र और संयमित हैं। उनके चरित्र का विकास अद्वितीय है। इतना होते हुए भी उनमें एक सद्‌गुण और है। वे अपने अधीन लोगों की कमजोरियों और अपराधों को सहन कर उन्हें क्षमा कर देती हैं।...'

भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड एलनबरो ने प्रथम अफगान युद्ध के बाद महाराजा श्री हरिराव होलकर को लिखे पत्र में अहिल्याबाई की महानता का बड़े गौरवपूर्ण शब्दों में उल्लेख कर लिखा था कि वे एक सर्वश्रेष्ठ, आदर्श व महान शासिका थीं। देश में सर्वत्र उनके प्रति आदर भाव पाए जाते हैं।

पं. कृष्णशास्त्री चिपलणकर ने स्वरचित अहिल्याबाई के चरित्र में एक स्थान पर लिखा है—'परस्पर विरोधी जो गुण हैं, वे सब उनके चरित्र में पाए जाते हैं। वे एक स्त्री थीं पर **टिप टाप** से रहने की बुद्धि उनमें कभी उत्पन्न नहीं हुई। स्वधर्म पर अटूट प्रेम होने पर भी विधर्मियों के साथ उन्होंने कभी द्वेष नहीं किया। इतना ही नहीं, उनके ऊपर पूरी कृपा ही रखी। युवावस्था में विधवा हो जाने पर भी उन्होंने पूर्ण रूप से पतिव्रत धर्म का पालन किया। अपार संपत्ति की स्वामिनी होने पर भी एक तपस्विनी के समान अपना जीवन व्यतीत किया। अमर्यादित विशाल राज्य की स्वतंत्र स्वामिनी होते हुए भी उसे अप्रतिमेय चातुर्य से संचालित करने पर भी उनमें अहंकार का लेश तक नहीं आने पाया। वे जो कुछ भी करती थीं उसमें परमेश्वर का भय रखती थीं। वे स्वतः अत्यंत शुद्ध व निर्मल मन की थीं। दूसरों के दोषों की ओर तिरस्कार की दृष्टि से वे कभी भी नहीं देखती थीं। बल्कि अपनी शक्ति भर उन दोषों पर पर्दा डालकर उन्हें सुधारने का प्रयत्न करती थीं। इससे कहना पड़ता है कि अहिल्याबाई मनुष्य रूप में

किसी देवी का ही अवतार थीं ।'

सुप्रसिद्ध विद्वान इतिहासज्ञ रायबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य के अनुसार—'यह लोकोत्तर महिला अपने अनेक सद्‌गुणों के कारण महाराष्ट्र के लिए ही नहीं, बल्कि समूची मानव जाति के लिए भूषण रूप हुई है । उनकी बुद्धिमता इतनी व्यापक थी कि वे प्रत्येक कार्य में होशियार व निपुण थीं । उनकी धार्मिकता इतनी उदार थी कि धर्म व नीति के हर क्षेत्र में उन्होंने अपना नाम अजर-अमर कर लिया । उनका दान-धर्म इतना प्रचंड था कि वैसा दान-धर्म आज तक हिंदुस्तान में किसी ने भी किया ही नहीं । उनका न्याय इतना सही होता था कि साहूकार और चोर दोनों उन्हें आशीर्वाद देते थे । वे किसी को भी अपनी प्रशंसा या चाटुकारिता करने ही नहीं देती थीं । उनकी धाक इतनी कड़ी थी कि उनकी आज्ञा के बिना किसी ने कभी कुछ किया हो या किसी ने उनका निरादर किया हो, ऐसा कभी हुआ ही नहीं । मराठा साम्राज्य की सत्ता के प्रति उनकी बुद्धि इतनी आदरयुक्त रही कि उन्होंने सदैव उसका समर्थन ही किया । बराबरी के सरदारों के प्रति उनका प्रेम सदैव इतना निर्मल था कि उन्होंने मंगल कामना ही की । उनका निर्लोभ मन इतना विशाल था कि उन्होंने न तो कभी दूसरों का राज्य हड़पने की इच्छा की और न कभी अपनी प्रजा या अधिकारियों से अन्याय के द्वारा कुछ लिया । जीवमात्र के प्रति उनकी दया इतनी व्यापक थी कि अपने नित्य के व्यवहार में उन्होंने पशु-पक्षियों तक को भी नहीं भुलाया । अपनी प्रजा पर उनका इतना प्रेम था कि वे उन्हें अपनी संतान ही मानती थीं ।...'

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जदुनाथ सरकार ने तथ्यों के आधार पर देवी को इतिहास की एक महान महिला माना है । वे लिखते हैं—'अहिल्याबाई के प्रति मेरा आदर बढ़ गया है । अभी तक केवल एक शासिका, सत्ता व संपत्ति की स्वामिनी होते हुए भी सरल सात्विक जीवन बिताने वाली माता के रूप में मैं उन्हें आदर देता था । उन्होंने कई मंदिर बनवाए, घाट बनवाए, बहुत-सा धन दान-धर्म में दिया । भूमि व गांव इनाम में दिए । पर अब उनका एक दूसरा ही स्वरूप मेरे सामने आया है । मूल कागज-पत्रों से यह सिद्ध होता है कि वे प्रथम श्रेणी की राजनीतिज्ञ थीं और इसीलिए उन्होंने इतनी तत्परता से महादजी को सहयोग दिया । यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि अहिल्याबाई के आश्रय के बिना उत्तर भारत की राजनीति में महादजी को इतना श्रेष्ठत्व कदापि नहीं मिलता ।'

24

अहिल्याबाई का महत्व

अहिल्याबाई एक विलक्षण प्रतिभा संपन्न नारी थीं। एक छोटे-से गांव के साधारण परिवार में जन्म ले, एक विशाल राज्य की सर्वेसर्वा बन अपने परम तेजस्वी, कर्मठ व महान जीवन के द्वारा अपने जीवन काल में ही मां, सती व देवी के रूप में पूजित हो अक्षय कीर्ति प्राप्त करना अहिल्याबाई का ही काम था। अहिल्याबाई की उपमा उनसे ही दी जा सकती है।

उनमें जितने सद्‌गुण थे, उतने एक साथ शायद ही किसी में एक स्थान पर मिलेंगे। कहीं धर्मपरायणता, पर-दुख कातरता व परमार्थ की भावना रहती है तो वहां राजनीतिज्ञता व राज्य संचालन के गुणों का अभाव रहता है। कहीं राजनीतिक सूझबूझ रहती है तो वहां धार्मिकता व कर्तव्य भावना की कमी रहती है। इसी प्रकार वीरता-धीरता के साथ विनम्रता का और शक्ति-वैभव के साथ चरित्रबल का संयोग प्राय: नहीं मिलता। पर अहिल्याबाई के जीवन में ये सारे सद्‌गुण और व्यावहारिक सत्य एक साथ सहज ही साकार हो गए थे। भारत की धर्मपरायण व सर्व कल्याणकारी हिंदू संस्कृति की वे साक्षात प्रतिमूर्ति थीं। उनका जीवन भारतीय नारीत्व का ज्वलंत उदाहरण था।

उनका जीवन जितना संघर्षमय व दुखी रहा, उतना बिरलों का ही रहा होगा। पास-दूर के कुछ लोगों ने उन्हें बहुत दुखी किया। फिर एक से बढ़कर एक दैवी आघात भी उन पर हुए। उनके ससुराल व पीहर के प्राय: सब सदस्य उनके सामने स्वर्ग सिधार गए। पर ये सब उन्हें कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सके। उन्होंने हर दुख व संकट का व हर चुनौती का पूरी शक्ति, साहस व तेजस्विता से सामना किया। संकटों के सामने वे झुकी नहीं, डरी नहीं। वे हर संकट से जूझीं व उन पर विजय प्राप्त की। आसपास छाए अंधेरे को कोसने या अभिशाप देने के बदले उन्होंने अपने जीवन का दीप जलाया और उस अलौकिक जीवन-दीप से सारी धरती को शाश्वत सुख का दिव्य प्रकाश मिला।

समस्त दुखों व दैवी आपत्तियों को उन्होंने जगताधार प्रभु की इच्छा समझकर सदा स्वीकार किया, बड़ी वीरता व धीरज से सब सहन किया और विवेक व धर्म को कभी

त्यागा नहीं। उच्च कोटि की निर्लिप्त धर्म परायणता, विवेक, ज्ञान व भगवान के चरणों में पूर्ण समर्पण के कारण ही घोर आपदाओं में वे अडिग व अविचलित रहीं। आपदाओं व आघातों ने उन्हें सदैव ऊपर उठाया। हर संकट व तूफान उन्हें नई महानता प्रदान करता गया।

तत्कालीन भारत में महिलाओं का स्थान समाज में अत्यंत गौण था। स्त्री का स्थान घर के भीतर था व वहां भी उसका कोई महत्व नहीं था। उसकी स्थिति अत्यंत दलित व दयनीय थी। महिलाओं की शिक्षा व विकास के कोई अवसर नहीं थे। उनका जीवन अत्यंत दुखी, असुरक्षित व कई सामाजिक बंधनों में जकड़ा हुआ था। ऐसे कठिन समय में अहिल्याबाई ने अपने घर में स्वर्ग बसाया, बाहर एक विशाल राज्य का सफलतापूर्वक संचालन किया व कई उल्लेखनीय कार्य किए। उन्होंने अपने जीवन को मंदिर के समान पवित्र, प्रेरक व महान बनाया। इन महानताओं के कारण ही लोग उन्हें गंगा-यमुना के समान पवित्र, सीता-सावित्री के समान सती व देवी मानकर पूजने लगे थे। उनके जीवन काल में ही इस देश के निवासी उन्हें गंगाजल निर्मल, पुण्यश्लोक व प्रातः स्मरणीय जैसे श्रेष्ठ विशेषणों से संबोधित करने लगे थे। तब से देवी के प्रति श्रद्धा की भावना दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। वे एक रानी व दो बच्चों की मां थीं पर उनका हृदय इतना बड़ा व वात्सल्य रस से परिपूर्ण था कि सब उन्हें अपनी सगी मां के समान ही मानते थे। उन्होंने लोकमाता का स्थान प्राप्त कर लिया था। पूरे भारत के व समूची मानवता के स्थाई हित को ध्यान में रखकर ही उन्होंने कार्य किए थे। लुटेरों के रूप में मरहठे मालवा व राजस्थान में आए थे। इस कारण इन प्रदेशों की जनता के मन में उनके प्रति अच्छे विचार नहीं थे। पर अहिल्याबाई के कारण लोगों की उन भावनाओं में बहुत कमी हो गई।

इस देश के तीर्थ स्थानों, पवित्र नदियों, महापुरुषों, धर्म ग्रंथों, विद्वानों व यहां के महान धर्म ने ही भारत का निर्माण किया है। ये ही भारत का शाश्वत सुख का दिव्य संदेश सारी धरती को देते आए हैं। अहिल्याबाई ने उन्हें पूर्ण महत्व प्रदान किया। सार्थक ज्ञान की प्राप्ति व विद्या का अध्ययन-अध्यापन प्राचीन काल से ब्राह्मणों का विशेष कर्तव्य भारत में माना जाता रहा है। बीच के काल में विभिन्न कारणों से ब्राह्मणों व धर्म को बहुत बुरे दिन देखने पड़े। पर अहिल्याबाई ने सत्ता में आते ही भारतीय ज्ञान व धर्म को असाधारण महत्व प्रदान किया। देश भर में मंदिर बनने लगे, मंदिर व घर ब्राह्मणों के पूजा पाठ व वेद मंत्रों के प्रेरक स्वरों से गूंजने लगे। देश भर के विद्वानों, पुराणिकों, कीर्तनकारों, पंडितों, कर्मकांडियों, ज्योतिषियों आदि को देवी ने महेश्वर में सम्मान सहित बुलाया, उन्हें संरक्षण व आश्रय दिया और देश के अन्य तीर्थस्थानों में भी यह धार्मिक जागरण साकार किया। अगणित वर्षों के बाद भारतीय ज्ञान को व उस ज्ञान के संदेशवाहकों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ और धर्म व ज्ञान का प्रसार बढ़ने लगा। देवी के इस मौन आचरण का स्थाई प्रभाव देश पर पड़ा और तब अनेक राजाओं, सरदारों,

जागीरदारों व धनवान लोगों ने भी विद्वान ब्राह्मणों, कीर्तनकारों आदि को आश्रय देना शुरू कर दिया था। मंदिरों, घाटों, सरायों, कुओं-बावड़ियों आदि के निर्माण देश भर में शुरू किए गए। सेवा व सहायता कार्यों और राष्ट्रीय महत्व के अनेक कार्यों के कारण अहिल्याबाई ने धार्मिकता, एकात्मता व राष्ट्रीयता की सुप्त भावनाओं को जाग्रत कर सच्चे अर्थों में राष्ट्र-निर्माण का कार्य किया था।

अहिल्याबाई ने मंदिरों में परम धार्मिक व विद्वान ब्राह्मणों की नियुक्ति की थी। काशी, इलाहाबाद, लखनऊ, हरिद्वार आदि स्थानों में उन्होंने महाराष्ट्र के अनेक परिवारों को और उत्तर प्रदेश के कई परिवारों को मालवा व महाराष्ट्र में बसाया था। देश के विभिन्न क्षेत्रों के शिल्पी, मूर्तिकार व अन्य लोग मंदिर, सराय आदि बनाने के लिए सुदूर क्षेत्रों में देवी ने भेजे थे और उनमें से अधिकांश अपने नए स्थानों पर देवी का संरक्षण पाकर बस गए। मालवा के रीति-रिवाजों, व्रतों, त्योहारों आदि को अहिल्याबाई ने पूर्ण सम्मान दिया और उन्हें अपनाया भी। उनके कारण मालवा के कई व्रत-त्योहार आदि महाराष्ट्र पहुंचे व वहां उन्होंने स्थान बना लिया व महाराष्ट्र की कई बातें मालवा में स्थाई हो गईं। इस प्रकार देश के अनेक भागों में और विशेषकर मालवा व महाराष्ट्र में, देवी के कारण सांस्कृतिक आदान-प्रदान बड़े प्रभावी ढंग से हुआ। धार्मिक व सामाजिक उदारता देवी की एक प्रमुख विशेषता थी। इसका भी व्यापक व स्थाई परिणाम समाज पर हुआ। देश में सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का देवी का यह कार्य अनूठा व अत्यंत महत्वपूर्ण था।

साधारण परिवार में जन्म व नाम मात्र की शिक्षा होते हुए भी जब वे एक राज्य की महारानी बनीं तो उन्होंने अपने-आपको उस उच्च पद के योग्य बनाया और सतत नई ऊंचाइयां प्राप्त करती रहीं। किसी भी प्रकार का छोटापन, स्वार्थ या छल-कपट उनके जीवन में नहीं था। सबके शाश्वत कल्याण की निष्काम व निस्वार्थ भावना और भगवान पर अविचल श्रद्धा ने ही उन्हें इतनी शक्ति व योग्यता प्रदान की थी। उन्होंने अपने जीवन द्वारा यह बता दिया कि मनुष्य अपने जन्म या कुल के द्वारा नहीं, बल्कि अपने श्रेष्ठ कार्यों, उच्च विचारों व अच्छे जीवन के कारण महान बनता है। देवी ने कोई ग्रंथ नहीं लिखा, पर उनका जीवन एक परम प्रेरणामयी व लोकोपयोगी खुले ग्रंथ के समान है। इस ग्रंथ के हर पृष्ठ में सच्चे सुख व शांति का संदेश है। संसार में अगणित लोग जन्म लेते हैं पर उनमें खरे अर्थों में मनुष्य का नाम सार्थक करने वाले गिनती के ही होते हैं। सागर तट पर रेत, शंख व सीपों के बड़े ढेर रहते हैं पर खरे मोती गिनती के व बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। अहिल्याबाई एक खरा, मूल्यवान व अलभ्य मोती थीं।

अहिल्याबाई का नाम संपूर्ण भारत में बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। भारत व मानवता को उनकी देन कई रूपों में सहज ही गिनाई जा सकती है। उन्होंने अपने जीवन द्वारा एक पुत्री, स्त्री, बहू, मां, शासिका व धर्मप्राण महिला का परम सुखदायी व

अनुकरणीय चित्र समाज के सामने रखा है। उनके जीवन ने भारतीयों की विचारधारा व जीवन को शुभ दिशा प्रदान की। इसी कारण उनके जीवन काल में व बाद में कई लोगों का हृदय परिवर्तन हुआ था। लूट-मार व हत्याएं करने वाले कई लोगों पर उनका ऐसा प्रभाव पड़ा था कि वे बुरी राह त्याग कर अच्छे आदमी बन गए थे।

'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार उनकी प्रजा भी धार्मिक हो गई थी। देश के कई भागों में तब अकाल पड़े थे पर देवी के राज्य में एक बार भी अकाल नहीं पड़ा। लोगों को अनाज, दूध-पानी, कपड़े आदि का कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। महेश्वर में उनके संरक्षण में चल रहे वस्त्रोद्योग के कारण लोगों को अच्छा व सस्ता कपड़ा मिलने लगा था। उनके शासनकाल में राज्य में एक भी दैवी दुर्घटना नहीं हुई। यह भी देवी के पुण्य प्रताप का ही फल था।

एक श्रेष्ठ व आदर्श शासिका की दृष्टि से भी अहिल्याबाई का महत्व असाधारण है। उन्होंने अपनी प्रजा को सब तरह से सुखी बनाया। उनका राज्य सच्चे अर्थों में राम-राज्य था। उस युग में उन्होंने जैसा अच्छा शासन प्रबंध किया, वह सब दृष्टियों से अनुपम ही था। देवी ने राजनीति व राजकीय जीवन को भी पूर्ण पवित्रता प्रदान की। धर्माचरण व राज्य संचालन इन दोनों कार्यों को सफलतापूर्वक श्रेष्ठता के साथ संपन्न कर उन्होंने ये सत्य अच्छी तरह से स्थापित कर दिए कि राज्य संचालन की जितनी योग्यता व शक्ति पुरुषों में है, उतनी ही महिलाओं में भी है और लोक-परलोक दोनों एक साथ अच्छी तरह से साधे जा सकते हैं।

देवी अहिल्याबाई का नाम सदा के लिए भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया है। इस देश की जनता अहिल्याबाई को किसी एक परिवार या प्रांत विशेष की नहीं बल्कि पूरे भारत की मानती है। देवी का स्मरण करते ही छोटे-बड़े सबका मस्तक उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति से नत हो जाता है। अपनी इस अगाध श्रद्धा के कारण ही इस देश की जनता ने उन्हें देवत्व प्रदान कर दिया है।

प्रातः स्मरणीया देवी श्री अहिल्याबाई होलकर ने मानव-मात्र के शाश्वत सुख-शांति के लिए जो कुछ किया है, उसे भारतीय सदा याद रखेंगे। देवी का श्रेष्ठ जीवन समूचे मानव समाज की अमूल्य व प्रेरक निधि बन गया है।

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित